हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

वा. ग. वडनेरे,
ज्योतिष-विशारद,

४८६ अ, शुक्रवार पेठ,
शाहुपुरा, पुणें २.
(महाराष्ट्र)

क्रमांक V 17 13

दिनांक २७।3।१९६८

पू० माताजी

सादर प्रणाम.

आपका दिनांक २१.३.६८ का पत्र मिला है। आप और देहली निवासी सज्जन लोग जो संख्या भेजते है वह मुझे मिलता है।

— पालनपूर सौ. कु. रामेश्वरी देवी सराफसे शांति स्तवन जपसंख्या मिलती है। उन्हें यहांसे

कुछ हरे रामका - साहित्य
भेज दिया गया है।

- दि. २१-३-६५ तक १२ कोटी
जप संख्या (सवा मिलकर)
पूर्ण हुई थी है। शेष संख्या भी
इतने दिन पूर्ण होगी। आप
विस्तार और नियम अवश्य
करेंगे। प्रति रवि को जागना।
आशीर्वाद. सत्संग. पूर्व. [illegible]

V/9/3
Mrs. V. D. Bakshi
33A, Hindustan
Housing Factory
Quarters.
Jang Pura
New Delhi -14





ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य
धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥



ॐ = पर ब्रह्म। भूर्भुवः स्वः = तीनों लोक ॐकाररूप पर ब्रह्मात्मक हैं। तत् = वह परब्रह्म जो सब की आत्मा है, अतः जिसे सभी स्वानुभव से ही जानते हैं (क्योंकि प्रत्येक जीव अपने आपको जानता ही है) सवितुः = समस्त ब्रह्मांड के उत्पादक। वरेण्यं = निरतिशय आनन्द रूप होने के कारण सब के द्वारा वरण करने के योग्य। भर्गः = अविद्या आदि दोषों को जला डालने वाले तेजो रूप। देवस्य = दान शील, द्योतन शील परमेश्वर का। धीमहि = हम ध्यान करते हैं। धियः = बुद्धियों को। यो = जो नः = हमारी। प्रचोदयात् = प्रेरणा करे, सन्मार्ग की ओर अग्रसर करे।

भूः भुवः और स्वः ये तीनों लोक ॐकाररूप परब्रह्म ही हैं। हम उस परब्रह्म का ध्यान कर रहे हैं, जो सभी की आत्मा होता हुआ सभी के द्वारा आत्म अनुभव-प्रमाण से जाना हुआ है, जो इस अखिल ब्रह्माण्ड रूपी प्रपंच को सृष्टि आदि कृत्यों द्वारा विकास में लाता है, जो आनन्दमय होने के कारण सभी के द्वारा वरण करने योग्य है, जो अविद्या को जला देने वाला ज्ञानमय तेज है तथा जिसे हम प्रार्थना कर रहे हैं कि वह हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रवृत्त करे।



The three worlds consisting of Earth, Atmosphere and sky are the forms of Absolute God called OM. We are meditating on that Absolute God who, being the self of all, is known to all through their 'self experiance; who, through the activities of Creation, preservation etc. Makes this whole universe evolve; who being bliss and bliss alone, is worthy to be liked by all. Who is the fire of knowledge which burns all ignorance and to whom we pray that he may guide and lead our intellects on the right path.

नोट:— १. हम इस मंत्र के अनुवादार्थ प्रो० बलजिन्नाथ जी पण्डित के अत्यन्त आभारी हैं।
२. निःशुल्क प्राप्तिस्थान:-

चमन लाल सप्रू द्वारा कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, श्रीनगर

Bansi Art Press Srinagar.

ऊर्ध्वचेता प्रतिष्ठान - 20/14, शक्तिनगर, दिल्ली-110007

के तत्वावधान में आयोजित

गोविन्द शास्त्री कृत 'तंत्र-दर्शन' विमोचन समारोह

एवं

"तंत्र-विचार और साधना" संगोष्ठी उद्घाटन समारोह में आप

रविवार, 25 जनवरी 1981 को पूर्वान्ह 11-30 बजे

उपाध्यक्ष कक्ष, विठ्ठल भाई पटेल भवन, रफी मार्ग, नई दिल्ली में सादर आमंत्रित हैं।

मुख्य अतिथि - **श्री केदार पांडे, रेल मंत्री, भारत सरकार**

संयोजक मंडल

श्री रत्नयधारी जैन, आचार्य सुमन्तभद्र
डॉ० दामोदर, शास्त्री डॉ० रूददेव त्रिपाठी
श्री आर० के० गर्ग, श्री गुर प्रकाश शर्मा

स्वागत समिति

श्री जी० एस० मायावाला, श्री भवानी शंकर
श्री प्रवेश साहनी, श्री जगदीश प्रसाद गर्ग
श्री सुशील गाँधी, श्री प्रदीप बक्शी

सम्पर्क सूत्र :—अशोक कुमार जैन—दूरभाष : 713778, 514050

कृपया समय से 15 मिनट पूर्व पधार कर समारोह की शोभा बढ़ायें।

उर्ध्वचेता प्रतिष्ठान

२०/१४, शक्तिनगर, दिल्ली-११०००७

भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन व इतिहास तथा उससे सम्बद्ध विविध भाषायी साहित्य/वाङ्मय के शोध, अध्ययन एवं प्रकाशन की विविध प्रवृत्तियों में संलग्न अग्रणी संस्थान ।

क्रमांक..................

दिनांक 15-1-81.

परम श्रद्धेय
आचार्य अमृत वाग्भव

सादर प्रणाम.

हम २२.१.८१ को 'तंत्र- विचार एवं प्रयोग' संगोष्ठी का आयोजन कान्सटीट्यूशन क्लब, रफी मार्ग, नई दिल्ली में कर रहे हैं। यह आयोजन हम आपके पावन सान्निध्य में करना चाहते हैं। अपना आशीर्वाद देकर कृतार्थ करें।

साभार,

भवदीय
अशोक कुमार जैन
सचिव

दिल्लीस्थ-श्रीलालबहादुरशास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठस्यानुसन्धान-प्रकाशन-
विभागप्रवर्तितायाः षाण्मासिक-प्रकाशनरूपपत्रिकायाः षष्ठ-सप्तम-कुसुमरूपो विशेषाङ्कः

अन्वेषणा

(अतिरिक्तं मुद्रणम्)



श्रीलालबहादुरशास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्

दिल्लीस्थ-श्रीलालबहादुरशास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठस्यानुसन्धान-प्रकाशन-विभागप्रवर्तितायाः षाण्मासिक-प्रकाशनरूपपत्रिकायाः षष्ठ-सप्तम-कुसुमरूपो विशेषाङ्कः

अन्वेषणा

(अतिरिक्तं मुद्रणम्)



श्रीलालबहादुरशास्त्री-केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्

ये संस्कृत-सजातीय भारोपीय भाषाएँ और इनमें सर्वनामों का विकास

श्री भवानीशङ्कर त्रिवेदी

आज से लगभग २०० वर्ष पूर्व भारत के अंग्रेज मुख्यन्यायाधीश सर विलियम जोन्स की कृपा से जब संस्कृत का दिव्य आलोक यूरोप में पहुँचा तो वहाँ के भाषा-शास्त्रियों की आँखें खुलीं और उन्होंने तत्काल संस्कृत, ईरानी तथा यूरोपियन भाषाओं की सजातीयता स्वीकार कर ली। बॉप तथा उनके समकालीन प्रायः सभी यूरोपियन भाषा-वैज्ञानिकों ने ग्रीक, लेटिन तथा अवेस्ता जैसी प्रत्न भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत की अत्यधिक प्राचीनता को परखते हुए इसी को अन्य सभी भाषाओं की जननी घोषित किया और इसी आधार पर इस परिवार को 'संस्कृत परिवार' के नाम से अभिहित करना भी आरम्भ कर दिया। किन्तु आगे चलकर नव्यवैयाकरणों ने तालव्य-नियम की उद्‌भावना की, जिसके आधार पर ग्रीक, लेटिन आदि में विद्यमान कवर्गीय (कण्ठ्य) ध्वनियों को मूल तथा उन्हीं के स्थान पर संस्कृत में प्रयुक्त चवर्ग और श जैसी तालव्य ध्वनियों को उनसे विकसित सिद्ध कर दिखाया। साथ ही यह भी कि 'अस्' धातु के लट् लकार के म० पु० के संस्कृत रूप स्थ को लेटिन के एस्ते तथा उ० पु० ब० वचन के संस्कृत रूप स्मः को ग्रीक एस्मेस् Eesmes से विकसित देखकर यह प्रतिपादित किया कि संस्कृत, ग्रीक और लेटिन वस्तुतः सोदराएँ हैं और ये तीनों किसी अन्य भाषा से विकसित हैं। इसी आधार पर इस परिवार का नाम भी संस्कृत परिवार से बदलकर 'आर्य' अथवा इण्डोजार्मनिक या इण्डोयूरोपियन परिवार रख दिया गया। किन्तु इससे संस्कृत के महत्त्व में कोई अन्तर नहीं आया। जैसा कि कहा है —

तालव्यनियमे प्रोक्ते नव्यभाषाप्रवक्तृभिः ।
महत्त्वं सुरभारत्याश्चीयते नापचीयते ॥
प्रत्नैर्माता मता येयं मातृकल्पाग्रजा नवैः ।
भाषावैज्ञानिकैस्सर्वैस्सममेव समादृता ॥

यह ठीक है कि तालव्य-नियम से भारोपीय भाषाओं की एक नवीन विशेषता उद्घाटित हुई और नव्यवैयाकरणों के प्रयत्नों से ग्रीक और लेटिन के कुछ इने-गिने ऐसे रूप भी सामने आए, जिनके समक्ष संस्कृत के रूप कुछ विकसित प्रतीत होते हैं, किन्तु इससे संस्कृत के महत्त्व में रत्ती भर भी फर्क नहीं पड़ा, क्योंकि बॉप आदि प्रत्न जर्मन विद्वानों ने संस्कृत को यदि मातृभाषा माना था तो नव्य वैयाकरणों ने उसे भारोपीय भाषाओं की ऐसी अग्रजा Elder Sister स्वीकार किया जो माता तो नहीं, किन्तु मातृकल्पा अवश्य है। अंग्रेजी हो या जर्मन, रूसी हो या फ्रेंच, हिन्दी हो या फारसी, किसी भी नई या पुरानी भारोपीय भाषा का विकास और उसका भाषा शास्त्रीय स्वरूप संस्कृत के बिना समझा जा ही नहीं सकता, यह तथ्य आज भी उतना ही स्वीकार्य है, जितना कि आज से २०० वर्ष पूर्व था।

सर्वनामों का विकास

इसमें कोई सन्देह नहीं कि संस्कृत, ग्रीक, लेटिन, हिंदी, अंग्रेजी, रूसी आदि सभी भारोपीय भाषाएँ एक ही परिवार की हैं। फिर भी इस सम्बन्ध में विज्ञजनों के मन कभी-कभी दुविधा-ग्रस्त हो जाया करते हैं। जैसे कि हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् डा० रामविलास शर्मा ने इस आधार पर भाषा और समाज विषयक अपने एक बड़े ग्रन्थ में भारोपीय भाषाओं को एक ही परिवार की मानने से इन्कार कर दिया था कि सं० **एकविंशतिः** और अं० Twentyone जैसे संख्या-वाचक शब्दों में इकाई और दहाई की संख्याओं का क्रम एकसा नहीं है। यह तो खैर छोटी सी बात थी और आचार्य कार्ल ब्रुग्मान ने अपने ग्रन्थ में इकाई की संख्या के इस पौर्वापर्य सम्बन्धी शङ्का का समाधान भी भली-भाँति कर दिया था।

भारोपीय भाषाओं में प्रयुक्त सर्वनामों के नानाविध वर्णों, आकार-प्रकारों और अर्थभेदों को देखकर भी इन भाषाओं की सजातीयता में किसी को अविश्वास होने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं। उदाहरण के लिए उत्तम पुरुष वाचक सर्वनाम प्रथमा (कर्ता) बहुवचन के रूप को देखिए—हि० **हम**, अं० we बंगला **आमि**, पंजाबी **असि**, **अस्** ग्री० hamme, गॉं० weis, फा० **मा**, ज० wir, और रूसी **मो**, तथा ले० Nos में कहीं कोई सम्बन्ध या साम्य प्रतीत ही नहीं होता। इनमें से संस्कृत, गॉथिक, जर्मन और अंग्रेजी में रूपों की प्रकृति एक ही वि अवश्य दिखाई देती है, किन्तु इसमें भी सन्देह तब उत्पन्न होता है जबकि रूसी में इसी वि का अर्थ हम न हो कर तुम दिखाई देता है। कितना अन्तर है? अंग्रेजी में जो वी we '**हम**' के लिए प्रयुक्त है रूसी में उसीका अर्थ [illegible] गया। इसी प्रकार अंग्रेजी अस् us का अर्थ है **हमें या हमको** और पंजाबी में नस् [illegible] का अर्थ हो गया **हम**। अंग्रेजी के इस us के लिए हिन्दी में हमें है तो पंजाबी

में सानु, जर्मन में uns अन्ज और रूसी में नास् है तो फारसी में मा। सभी भाषाओं में अपने-अपने अलग-अलग रूप हैं। कोई भी तो एक दूसरे से मेल खाता शब्द दिखाई नहीं देता।

और यहीं संस्कृत का महत्त्व तथा वैशिष्ट्य ही क्यों महनीय मातृरूप भी प्रतिष्ठित हो जाता है। संस्कृत में एक ऐसी अद्‌भुत क्षमता है जिसके सहारे नानाविध भारोपीय भाषाओं का भेदभाव स्वतः समाप्त हो कर आपाततः प्रतीत होने वाला पार्थक्य दृढ़मूल ऐक्य में परिणत हो जाता है।

हमारे यहाँ प्रभु में निरवयव, कूटस्थ तथा सावयव श्रीविग्रह-सम्पन्न द्विभुज, चतुर्भुज, एकमुख, चतुर्मुख, पञ्चमुख आदि, दोनों रूपों की उपासना विहित है। ऊँकार अथवा कुशीय, कूटस्थ ब्रह्मा, स्वस्तिक और सुपारी के रूप में कूटस्थ गणेश, शिवलिंग के रूप में भगवान् शंकर और शालग्राम के रूप में भगवान् विष्णु के कूटस्थ अथवा निरवयव रूपों की उपासना होती है। हमारी प्रक्रिया एकांगी नहीं, सर्वांगीण है। और सुरभारती में भी यह वैशिष्ट्य अक्षुण्ण है, क्योंकि संस्कृत के सिवा अन्य सभी भाषाएँ एकांगी अथच अपूर्ण हैं। किसी ने शब्द-ब्रह्म के श्रीविग्रह-सम्पन्न सावयव रूप के भी पाणि,पाद, मुख, वक्ष आदि किसी एक ही अवयव को पूर्ण मानकर अपना लिया है। ठीक वैसे ही जैसे अपने यहाँ विभिन्न शक्तिपीठों में भगवती आद्या शक्ति सती के चरण आदि किसी एक ही अंग की विद्यमानता में भी पूर्ण स्वरूप की पूजा-प्रतिष्ठा होती है। इतना ही क्यों, कहीं-२ तो ऐसा भी हुआ है कि शब्द के कूटस्थ रूप के साथ भी मुख, चरण आदि अंगों का पृथक् से समायोजन कर दिया गया है जैसे शिवलिंग में एकमुख, चतुर्मुख और अष्टमुख दिखा दिए जाते हैं।

हाँ तो संस्कृत में उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष वाचक सर्वनामों के सावयव और कूटस्थ ये दो-२ रूप हैं। १. अह, २. वि, ३. वि, ४. अस्म और आव प्रकृति से निष्पन्न होनेवाले अस्मद् शब्द के रूप सावयव अथवा सविभक्तिक होते हैं जबकि वचन में मा और से तथा बहुवचन में नस्—ये कूटस्थ रूप हैं। इनके सिवा वेद में एक और कूटस्थ सार्वविभक्तिक रूप अस्मे भी सुप्रयुक्त है। इस अस्मे के बारे में निरुक्त में कहा गया है कि—

अस्म इति सार्वविभक्तिकम् अतोऽनेकार्थकम्। 'अस्मे ते बन्धुः' वयमित्यर्थः। यहाँ अस्मे हि० हम ओम बं० आमि तथा पं० असि, लहन्दा अस् की प्रकृति है तो— 'अस्मे यातं नासत्या सजोषा' में अस्मे कर्म ब० व० अं० अस् us के रूप में है।

यही स्थिति युष्मद् शब्द की है। यहाँ भी त्व, यू और युष्म प्रकृति से नि

वाले रूप सविभक्तिक हैं, जबकि एकवचन में ते और बहुवचन में वः कूटस्थ रूप हैं। हिन्दी, अंग्रेजी, जर्मन, रूसी, फारसी, फ्रेंच अथवा ग्रीक और लेटिन आदि के उत्तम तथा मध्यम पुरुष वाचक सबके सब रूप संस्कृत के कूटस्थ (वैकल्पिक) या सावयव (मुख्य) में से किसी एक रूप के ही कोई पूर्ण या घिसे हुए रूप मात्र हैं। जैसे कि—

अस्मद् शब्द के प्रथमा का बहुवचन गॉथिक में **वेइस** Veis बनता है। यह वी we के साथ बहुवचन की विभक्ति **अस्** के योग से निष्पन्न पूर्ण रूप है। अं० we में इसका विभक्त्यंश **अस्** is घिस गया। इधर संस्कृत **वयम्** अवे० वएम् Vaem में **अस्** के स्थान पर **अम्** विभक्ति प्रत्यय जुड़ गया। गॉथिक और संस्कृत दोनों ही में विभक्ति प्रत्ययांश **स्** रेफ में परिवर्तित हो गया। पं० **असि**, लहंदा **अस् अस्मे** का आद्यंश मात्र है, जबकि बं० **आमि** में मध्यवर्ती स् घिस गया। हिन्दी **हम** भी इसी से विकसित है। यहाँ आद्य अ घिस गया और, ह में परिवर्तित **स** के साथ **अ** आ बैठा। फारसी **मा** और रूसी मी me (हम) में **अस्मे** का अन्त्य **म** मात्र शेष रह गया। ग्रीक **हम्मे** hemme तो स्पष्टतः **अस्मे** है ही। लिथ्वानियन **मेस** mes और प्रत्न चर्च स्लाव **मु** my भी अस्मे के ही घिसे हुए रूप हैं।

लेटिन में प्रथमा बहुवचन का रूप लुप्त हो गया और वहाँ द्वितीया बहुवचन का कूटस्थ रूप **नोस्** Nos ही प्रथमा में भी चल निकला।

यही स्थिति **युष्मद्** शब्द के कर्ता बहुवचन की है। गॉथिक **युस** yus सविभक्तिक रूप है, ठीक वैसे ही जैसे सं० **यूयम्** और अवे० **यूशेम्** yushem अं० **यू** you में विभक्ति घिस गई। ग्रीक ह्यमेस hummes और लिथ् **युस** भी यही हैं। फा० **शुमा** (तुम) अपरिचित-सा लगता है। किन्तु यहाँ भी **युष्मद्** का आद्य **यु** घिस गया और **ष्म** में उ की स्वरभक्ति वैसे ही हो गई जैसे **अस्मे** से विकसित हिन्दी **हम** में **अ** आ बैठा।

हिन्दी में बहुवचन **युष्म** रूप सुरक्षित नहीं रह पाया। यहाँ एक वचन का **त्व** ही बहुवचन **तुम** का साधक बन गया।

लेटिन और रूसी में **तुम** के लिए प्रयुक्त क्रमशः **वो** Vo और **वी** Wi रूप इन सबसे भिन्न हैं। किन्तु संस्कृत में इनकी भी मूल प्रकृति विद्यमान हैं और वह है **वः**।

स्पष्ट है कि रूसी और लेटिन में संस्कृत के अनुलग्न वैकल्पिक कूटस्थ रूप **नस्** और **वस्** का बोलबाला है। लेटिन में तो **नोबिस्** Nobis (नोभिस्) जैसे रूप बनते हैं।

यहाँ प्रमुख भारोपीय भाषाओं में सर्वनामों के विकास का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जाता है।

उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुषवाचक सर्वनामों की सातों विभक्तियों और तीनों वचनों के रूप केवल संस्कृत में पूर्णतया और किसी अंश तक अवेस्ता में भी सुरक्षित हैं। संस्कृत के सिवा शेष सभी भारतीय भाषाओं में इनके इक्के-दुक्के रूप ही बच पाए हैं। जैसे कि—

ग्रीक

ग्रीक में **अस्मद्** शब्द के प्रथमा एकवचन का रूप ईगो Eago सुरक्षित है। और द्वितीया में **एमे** Eeme या मे (मा), चतुर्थी में इमाई Eemoi या **मोई** Moi (सं० मयि, सप्तमी एकवचन) और सम्बन्ध में **ईमू** Eemou या मू (मे) रूप प्रयुक्त हैं। इनके बहुवचन प्रथमा में **हेमेइस** hemeis, द्वितीया में हिमास hemas, चतुर्थी में हेमिन hemin और षष्ठी में हेमोन hemon बनते हैं। बहुवचन के ये सब रूप सं० **अस्मे** से सम्बद्ध हैं। षष्ठी बहुवचन में यहाँ **ओन्** On संस्कृत **आम्** प्रत्यय का प्रतिरूप है।

मध्यम पुरुष वाचक सर्वनाम के एकवचन के रूप प्र० सु Su (तु) द्वि० से Se (ते), च० सोई Soi (त्वयि, सप्तमी एकवचन) और षष्ठी सू Sou (तव, ते) बनते हैं और इन्हीं के बहुवचन क्रमशः प्र० **हुमेइस** humeis, द्वि० **हुमस** humas च० **हुमिन** humin और षष्ठी **हुमोन** humon हैं।

स्पष्ट है कि ग्रीक में **वयम्**, **यूयम्** और **वः** तथा **नः** से सम्बद्ध रूप सर्वथा लुप्त हो गए। यहाँ एकवचन में **स** तथा **तु** प्रकृतिक तथा बहुवचन में **अस्मे** और **युष्मे** प्रकृतिक रूप ही बचे हुए हैं।

लेटिन

यही स्थिति लेटिन की है। यहाँ **युष्मद्** और **अस्मद्** के एकवचन और बहुवचन के रूप क्रमशः इस प्रकार बनते हैं—

एकवचन

	अस्मद्	युष्मद्
प्रथमा (कर्ता)	ईगो Eego (अहम्)	तु Tu (तु, त्वम्),
द्वितीया (कर्म)	मे Me (मा)	ते Te (त्वा)
सम्प्रदान	मिहि Mihi (मह्यम्)	तिबि Tibi (तुभ्यम्)
सम्बन्ध	मेई Mei (मे)	तुइ Tui (ते)

बहुवचन

	अस्मद्	युष्मद्
प्रथमा (कर्ता)	नोस् Nos (नः)	वोस् Vos (वः)
द्वितीया (कर्म)	,, ,,	,,
सम्प्रदान	नोबिस Nobis (नोभ्यः)	वोबिस Vobis (वोभ्यः)
सम्बन्ध	नोस्त्रम Nostrum (नः)	वोस्त्रम Vostrum (वः)

स्पष्ट है कि यहाँ भी वयम्, यूयम् और अस्मे तथा युष्मे से सम्बद्ध रूप लुप्त हो गए हैं, केवल म और त तथा अनुलग्न नः और वः रूप ही शेष बचे हैं और इन्हीं के साथ विभिन्न विभक्ति-प्रत्यय जोड़कर काम चला लिया गया है।

अंग्रेजी

ट्यूटानिकवर्ग की गॉथिक, जर्मन, अंग्रेजी आदि भाषाओं का साहित्य उतना पुराना नहीं है। इस परिवार की सबसे बड़ी बहन गॉथिक में पादरी उलफिला द्वारा चौथी शताब्दी में किया गया बाइबल का अनुवाद मिलता है। इस प्रकार ट्यूटानिक वर्ग की भाषाओं का चौथी शताब्दी-पूर्व का इतिहास अनुपलब्ध है, फिर भी उत्तम-पुरुषवाचक तथा मध्यम पुरुषवाचक सर्वनामों की विभिन्न प्रकृतियों को अंग्रेजी और जर्मन आदि भाषाओं ने ग्रीक और लेटिन जैसी पुरानी भाषाओं की अपेक्षा कहीं अधिक सुरक्षित रखा हुआ है। जैसे कि—

उत्तम पुरुषवाचक अस्मद् तथा मध्यम पुरुषवाचक युष्मद् शब्द

एकवचन

	गॉथिक	जर्मन	अंग्रेजी
प्रथमा (कर्ता)	इक Ik	इख Ich	I आई (ईगो, अहम्)
	थु Thu	डु Du	दाउ Thou (त्वम्)
द्वितीया (कर्म)	मिक् Mik	मिख् Mich	मी Me (मा)
	थुक Thuk	डिख् Dich	दी Thee (त्वा)
सम्बन्ध	मेइना Meina	मिर Mir	माइ My माइन Mine(मे)
	डिर् Dir	दाइन् Thine (ते)	

अस्मद् तथा युष्मद् शब्द

बहुवचन

	गॉथिक	जर्मन	अंग्रेजी
प्रथमा (कर्ता)	वेइस् Veis	विर् Wir	वी We (वयम्)
	युस् Yus	इर Ihr	यू You (यूयम्)
द्वितीया (कर्म)	अन्सिस् Unsis	उन्स् Uns	Us अस्मे (नः)
	लुप्त ...	...	... ...
सम्बन्ध	अन्जर Unsara	अन्जेर Unser	अवर Our (नस्)
	इज्वेरा Izvara	यूख Euch	योर Your (युष्मे) ,,

स्पष्ट है कि गॉथिक, जर्मन और अंग्रेजी में—कर्ता, कर्म और सम्बन्ध के एक वचन और बहुवचन में उत्तमपुरुष म तथा वि, अस्मे और नस् तथा मध्यम पुरुष की त्व, ते तथा यु और युष्म प्रकृतियाँ न्यूनाधिक रूप में सुरक्षित हैं।

रूसी

रूसी भाषा में उत्तम पुरुष कर्ता एकवचन या बहुवचन मी (अस्मे) तथा सम्बन्ध के एकवचन में **मोया** (मे) रूप हैं। कर्म तथा सम्बन्ध आदि कारकों में क्रमशः **नास्**, **नाशा** (नस्) और **वास्**, **वाशा** (वस्-तुम्हारा) आदि रूप हैं। मध्यम पुरुष अथवा एकवचन तो, हिन्दी तू का प्रतिरूप है जो **त्वम्** से विकसित है। इसका बहुवचन वी (सं० अनुलग्न रूप वः) से सम्बद्ध है। और षष्ठी एकवचन **तोया** और **तेन्या** सं० (त्वा और) ते से सम्बन्ध हैं।

फारसी

फारसी में पुरुषवाचक सर्वनामों के केवल निम्न रूप बचे हैं—

प्रथमा एकवचन **मन्**, मैं (अस्मे) और तू (त्वम्)

तथा

बहुवचन **मा**, हम (अस्मे) और **शुमा**, तुम (युष्मा)

इनके सिवा सम्बन्ध में **मरा** (मेरा) और **तुरा** (तेरा) रूप भी सं० मे और त्व से ही सम्बद्ध हैं।

लेटिन में तद् शब्द

अन्य सर्वनामों की भाँति लेटिन में तद् Iste शब्द के रूप भी बहुत कुछ सुरक्षित हैं। यहाँ स्त्रीलिंग, पुंलिग और नपुंसकलिंग इन तीनों के रूप एकवचन तथा बहुवचन में बहुत कुछ सुरक्षित हैं। जैसे कि—

एकवचन

	पुंलिंग	स्त्रीलिंग
कर्ता	इस-ते is-te (ते, सः),	इस-ता is-ta (ता, सा)
कर्म	इस-तुम् Is-tum (तम्),	इस-ताम is-tam (ताम्)
सम्प्रदान	इस-ती Is-ti (तस्मै)	×
अपादान	इस-तो(द्) Is-to(D)(तस्माद्)	इस्ताद Is-ta(D) (तस्याः)
सम्बन्ध	इस-तीउस Is-tius (तस्य),	×

बहुवचन

कर्ता	इस-ती is-ti (ते),	is-tos इस-तॉस् (ताः)
कर्म	इस-तोस is-tos (तान्),	इस-तास is-tas (ताः)
सम्प्रदान	इस-तीस Is-tis (तेभ्यः),	×
अपादान	×	×
सम्बन्ध	इस-तोरुम Is-torum (तेषाम्),	इस्तारुम Istarum (तासाम्)

लेटिन में तद् शब्द के नपुंसकलिग के प्रथमा द्वितीया रूप भी संस्कृत की भाँति ही बनते हैं। एकवचन में इस-तुद् Is-tud (तद्) और बहुवचन में इस-ता is-ta (तानि)।

विशेष—लेटिन में तद् शब्द के साथ पूर्वपद इस् Is जुड़ा हुआ है यह और कुछ नहीं अस्, is धातु ही है। इस प्रकार 'इस-ते' का अर्थ हुआ 'वह है'। लेटिन में इसका अर्थ "वह जो तुम्हारे पास में है" होता है।

स्पष्ट है कि संस्कृत और अवेस्ता के पश्चात् सभी प्रकार के सर्वनामों के तीनों लिंगों और पाँचों विभक्तियों के एकवचन और बहुवचन के रूप लेटिन में काफी हद तक सुरक्षित हैं और यह भी कि विभक्ति-प्रत्यय भी लेटिन में लगभग ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। जैसे कि—

लेटिन और संस्कृत की विभक्तियां

	एकवचन		बहुवचन	
	संस्कृत	लेटिन	संस्कृत	लेटिन
कर्ता	(विभिन्न प्रत्यय)		अस्	es एस्
कर्म	अम्	em एम्	अस्	es एस्
सम्प्रदान	ए	i इ (सप्तमी विभक्ति)	ऐभ्यः	ibus इबुस्
अपादान	अस	e ए (चतुर्थी विभक्ति)	एभ्यः	ibus इबुस्
सम्बन्ध	अस्	is इस्	आम्	um उम्

निर्देशकार्थक is, ia और id (वह) इदम् (यह) शब्द

संस्कृत की भाँति लेटिन में भी इ प्रकृतिक 'इदम्' शब्द की रूपावली पुंलिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग तीनों में पृथक्-पृथक् हैं। जैसे कि—

एकवचन

कर्ता	इस is (पु०) इद् id (नपुं०) es एस (स्त्री)
कर्म	एउम् Eeum (पु० इमम्) Eam एअम् (स्त्री)
सम्प्रदान	एइ Eei
अपादान	एओ (पु०) इआ ea (स्त्री)
सम्बन्ध	एइउस् Eius (अस्य)

बहुवचन

कर्ता	एइ Eei (पु०) एअए eae (स्त्री) इआ ea (नपुं०)
कर्म	इऑस eos (पु०) इआ ea (नपुं०), एआस eas (स्त्री०)
सम्प्रदान	एइस Eeis (तीनों लिंगों में)
अपादान	एइस Eis (तीनों लिंगों में)
सम्बन्ध	एओरुम Eorum (एषाम्) पु० इआरुम earum (स्त्री) (आसाम्)

विशेष—लेटिन के इस इ प्रकृतिक 'इदम्' शब्द के सम्बन्ध में कुछ विशेषताएं द्रष्टव्य हैं जैसे कि —

(क) संस्कृत में **इदम्** का अर्थ यह है जबकि लेटिन में वह।

(ख) संस्कृत की भाँति लेटिन में भी इ प्रकृतिक इस शब्द के नपुंसकलिंग प्रथमा और द्वितीया एकवचन में इद् रूप सर्वथा समान है।

(ग) संस्कृत 'इदम्' शब्द के पुंलिग प्रथमा एकवचन में नपुंसक प्रथमा एकवचन अथवा पु० द्वितीया एकवचन की अम् विभक्ति ने आकर मूल स विभक्ति पर अधिकार जमा लिया और इ+अम्=इयम् रूप बन गया जो वास्तव में अनियमित है। जबकि लेटिन प्रथमा एकवचन रूप इस् is सर्वथा नियमित।

(घ) यही स्थिति संस्कृत कर्म एकवचन **इमम्** की है। यहां मध्यवर्ती म 'रामम्' के अनुकरण पर जबरदस्ती आ घुसा है। जबकि लेटिन एउम् Eeum रूप स्वाभाविक है। यहाँ अम् के अ ने इ को गुणित ए में परिवर्तित कर दिया है। यही स्थिति सम्प्रदान, अपादान और सम्बन्ध की है। सम्प्रदान (वास्तव में अधिकरण) की इ विभक्ति के कारण प्रकृति इ को गुण हो गया और रूप एइ ei बन गया जो उचित ही है।

(ङ) सम्बन्ध एकवचन में लेटिन मूल प्रत्यय **इस्** (अस्-उस्) विद्यमान है, क्योंकि संस्कृत के सिवा अन्य सभी भारोपीय भाषाओं में अकारान्त और इकारान्त दोनों प्रकार के शब्दों में केवल **अस्** ही है। जबकि संस्कृत में अकारान्त शब्दों में **अस्** के स्थान पर स्य आ जमा है।

स्पष्ट है कि इ+अस से निष्पन्न लेटिन रूप एइउस Eius स्वाभाविक है। यहाँ अस् के कारण प्रकृति इ को वृद्धि होकर एइ—ए रूप बन गया।

(च) कर्म बहुवचन में स्त्रीलिंग और पुंलिग दोनों में लेटिन **अस्** विभवित सुरक्षित है, जबकि संस्कृत में स्त्रीलिंग के रूप **इमा:** में तो अस् बचा रह गया, पर पुंलिग में उसके स्थान पर **आन्** आ बैठा।

(छ) षष्ठी बहुवचन की विभक्ति आम् संस्कृत और लेटिन दोनों में समान है और इ प्रकृति भी। स्त्रीलिंग रूप लेटिन इआरुम earum और सं० आसाम् दोनों में स्त्रीवाचक **आ** एकसा ही है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वास्तव में संस्कृत और लेटिन एक ही भाषा की दो विभाषाएँ मात्र हैं। यह बात दूसरी है कि संस्कृत में अधिकांश प्राचीन रूप सुरक्षित हैं जबकि लेटिन बहुत विकसित हो गई।

'क' प्रकृतिक qui, quae, quad (जो) शब्द

एकवचन

प्रथमा कर्ता	क्वइ qui (क:) पु० क्वोद् quod न०
कर्म	क्वेम् quem (कम्) पु० क्वाम् quam (काम्) स्त्री०
सम्प्रदान	कुइ cui (तीनों लिंगों में)
अपादान	क्वुओ quo पु० क्वुआ qua स्त्री०
सम्बन्ध	कुयुस cujus (तीनों लिगों में)

बहुवचन

कर्ता	क्वी qui (के) पु० क्वाए quae (का:) स्त्री०
कर्म	क्वुओस quos (का:) पु० क्वुआस quas (का:) स्त्री०
सम्प्रदान	क्विबुस quibus (केभ्य:) तीनों लिंगों में
अपादान	क्विबुस quibus (केभ्य:)
सम्बन्ध	क्वओरुम quorum पु० क्वारुम quarum स्त्री०

विशेष—'क' प्रकृतिक इस किम् qvi शब्द की रूपावली पाँचों विभक्तियों में इतनी समान है कि लेटिन तथा संस्कृत में अन्तर किया ही नहीं जा सकता। जैसे कि—

(क) सम्प्रदान और अपादान बहुवचन की विभक्ति भ्यस् से निष्पन्न रूप संस्कृत केभ्य: और लेटिन quibus सर्वथा एक ही है।

(ख) स्त्रीलिंग कर्म बहुवचन संस्कृत रूप का: और लेटिन quae भी एक ही हैं।

(ग) कर्म एकवचन के पुंलिग और स्त्रीलिंग दोनों के रूप दोनों भाषाओं में अम् विभक्ति प्रत्यय के योग से निष्पन्न होकर क्रमश सं० कम् लेटिन quem क्वेम (पु०) तथा सं० काम् लेटिन quam क्वाम् (स्त्री०) निष्पन्न हुए हैं।

(घ) षष्ठी बहुवचन में आम् प्रत्यय भी उभयत्र समान है।

(ङ) शेष विभक्तियों में संस्कृत के मूल प्रत्ययों के स्थान पर दूसरे प्रत्यय आ बैठे हैं। जैसे कि पुंलिग कर्म बहुवचन में अस् के स्थान पर संस्कृत में आन् आ गया।

यहाँ ध्यान में रखने की एक और बात यह भी है कि संस्कृत में 'क, प्रकृतिक शब्द का अर्थ प्रश्नवाचक कौन क्या है, जब कि लेटिन में यह संस्कृत क यत्—जो जिसके अर्थ में चलता है। अंग्रेजी who हू इसी लेटिन qui से विकसित है। इसी प्रकार संस्कृत सर्व लेटिन solus तथा संस्कृत अन्य लेटिन Alus और संस्कृत स्व लेटिन sese (पु० ए० व०) तथा suus (ष० ए० व०) एवं संस्कृत स प्रकृतिक (सः, सा) लेटिन में Hic (सः) और Hace (सा) की रूपावली भी संस्कृत के समान ही चलती है।

अं० इट् it (यह) सं० और ले० इद् से तथा देट् that (वह) सं० तद् से के ही प्रतिरूप हैं।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धातुओं, उनके क्रिया रूपों संख्यावाचक शब्दों तथा संज्ञाओं की ही भाँति सर्वनाम भी सभी भारोपीय भाषाओं में लगभग एक से ही हैं। तथा यह भी कि उन सब में व्याप्त एक और अखण्ड तत्त्व की पहचान एक मात्र संस्कृत के सहारे ही की जा सकी है, और यही है संस्कृत का सर्वातिशायी वैशिष्ट्य, और इसी आधार पर संस्कृत का मातृकल्पा अग्रजा रूप स्थिर किया गया है और इसी से यह कथन भी सर्वथा सत्य सिद्ध हो जाता है कि—

आंग्लप्रभृतिभाषाणां संस्कृतज्ञानमन्तरा।
असम्भवं हि व्याख्यानं निश्चप्रचमिदं मतम्॥

विश्व-व्याप्तं संस्कृत-तत्त्वम्

—डॉ० भवानीशङ्कर त्रिवेदा

व्याप्तं हि संस्कृतं तत्त्वमाद्यन्तमवलोक्यते ।
यूरोपेरानभाषासु द्वीप-द्वीपान्तरेषु[1] च ॥

संज्ञा-सर्वनाम-क्रियापदानां संस्कृत-समानत्वम्

संस्कृतमनुरुद्ध्य प्रवृत्तायां भाषाविचारणायां भारतं केन्द्रीकृत्य भाषासमूहो भागद्वये आपतति —

(क) भारतात् पश्चिमोत्तरीयाः संस्कृतसजातीयाः फारसीग्रीकांग्लशर्मण्यसदृशा भारोपीया भाषाः

(ख) भारतस्य आग्नेय्या दक्षिणपूर्वीया वा सिंहलथाईदेश —इन्डोनेशियादिदेशानां तमिल-तेलगु-सिंहली,-थाई-इण्डोनेशियन-सदृशाः संस्कृतसम्बद्धा भाषाः ।

एतदस्त्यनयोर्वैशिष्ट्यम्— फारस्यांग्लशर्मण्य-ग्रीकादि-संस्कृत-सजातीय(भारोपीय)-भाषाणां शब्दावल्या सह व्याकरणमपि संस्कृतमनुसरति । तत्र तमिलतेलगुकन्नड़-मलयालम्सिंहलीथाईइण्डोनेशियनादिसंस्कृतसम्बद्धभाषाणां शब्दावली तु संस्कृतबहुलास्ति परं तासां व्याकरणं संस्कृतं नानुसरति, अत एव ताः 'संस्कृतसजातीया' इति व्यपदेष्टुं न शक्यन्ते, अपि तु 'संस्कृतसम्बद्धा' इत्येव व्यपदिश्यन्ते ।

संस्कृतसजातीयासु प्रत्नासु भाषासु ईरानदेशीय-पारसीकानां धर्मग्रन्थस्यावेस्ताया भाषा वैदिकभाषां सर्वथानुसरति । 'गाथा' इत्याख्यावेस्तामन्त्राणामनायासमेव संस्कृतच्छाया

१— पुराणेषु 'द्वीपशब्दः' भारताय, 'द्वीपान्तरशब्दश्च' स्याम (Thighland) जावा,-सुमात्रा-आदि इण्डोनेशिया-द्वीपसमूहाय सुप्रयुक्तः ।

विधातुं शक्यते । सा च संस्कृतच्छाया वेदमन्त्रवत् प्रतीयते । अथ च दारा दारय (धारयद् वसुः) प्रभृति-प्रत्नेरानीयसम्राजां प्रत्नपारस्यां लिखितानां शिलालेखानां भाषा लौकि कसंस्कृतभाषां सर्वथानुहरति । एतेषां पारसीकशिलालेखानां संस्कृतच्छाया विहितचरा प्रकाशितचरा च ।

यूरोपीयप्रत्नभाषासु ग्रीकभाषाया व्याकरणं संस्कृतस्य च व्याकरणमेकमेवास्ति । ग्रीक्यां न केवलं धातूनां 'ति' 'अन्ति' मि, मः, इत्यादयः परस्मैपदप्रत्यया एव सन्ति, अपि तु 'ते' 'अन्ते' इत्यादयः आत्मनेपदप्रत्यया अपि तथैव प्रयुज्यते । यथा हि--

सं०	ग्रीक०	सं०	ग्री०
शेते	केइते Keite	शेरते (शेन्ते)	केइन्ते Keinte

ग्रीक्यामपि संस्कृतवल्लिट्लकारोऽस्ति । तत्र च धातोर्द्वित्वमभ्यासलोपश्चत्वादिकञ्च जायते । दृश् भारो० Dorke दोर्क्वे, लिटि प्रथमपुरुषैकवचने संस्कृत-'ददर्श'-वद् ग्रीक्यामपि 'देदोर्के' Dedorke इति रूपं जायते । लङि, लुङि च संस्कृतवद् ग्रीक्यामपि अडागमो जायते । परं ग्रीक्यां जातेन महता ध्वनिविकरणेन तस्याः पदजातमनायासं परिचेतुमपि न शक्यते । यथा— सं० 'नर' शब्दस्य anthros इति एण्डोरे इति वा रूपं जायते । एवमेव सं० 'दधाति' ग्रीक्यां 'तिथेइति' titheiti इति जायते ।

एवमेव लेटिनभाषापि सर्वथा संस्कृतमनुहरति । तत्र भारोपीया ध्वनयोऽपि सुरक्षितास्सन्ति । अथ च प्रथमा, द्वितीया, चतुर्थीषष्ठ्योः, स्त्री० पुं० नपुंसकैकवचन-बहुवचन-विभक्तयोऽपि लेटिन्यां संस्कृते च समाना एव ।

ट्यूटानिक (जर्मन) वर्गस्योपलब्धायाः प्रत्नतमाया गॉथिकभाषायाः संस्कृतेन सह एतादृशं घनिष्ठं साम्यं वर्तते यत् पादरी 'उल्फिल्ला' महोदयेन चतुर्थशताब्द्यां विहितस्य बाइबिलस्य गॉथिकमनुवादं पठता भाषाविज्ञानपितामहेनानुभूतं यत् स गॉथिकरूपेण बाइबिलस्य संस्कृतानुवादमेव पठन्नासीदिति ।

अद्यतनीनायाः फारसीभाषाया अपि न केवलं पदजातमपि तु व्याकरणमपि संस्कृतमनुसरति । तत्र अस् धातोः —

अस्त	(अस्ति)	अन्द	(सन्ति)
इ	(असि)	एद्	(स्थ)
एम्	(अस्मि)	अएम	(स्मः)

इति रूपाणि प्रचलितानि सन्ति ।

फारसीमहाकवेर्महात्मनः शेखसादीमहोदयस्य गुलिस्तायामेतत् पद्यमस्ति —

अब्रऽगर बारद् आबे जिन्दगी ।
हरगिज शाखे बेद बर न खुरी[1] ॥

अस्य संस्कृतच्छाया एवं भवितुमर्हति-अभ्रं चेत् व्रीयात्, (वर्षेद्वा) आपः जीवितस्य (जीवनस्य वा) । कदापि शाखाया वेतसः वरं (फलं) न स्वर्दिष्यसि । (फारस्यां सं स्वर्द्, 'खुर्दन्' इति जायते ।)

एवमेव 'शाहनामा' इत्याख्यस्य फारसी-महाकाव्यस्य समग्रापि भाषा मया (लेखकेन) संस्कृते परिवर्तितचराऽस्तीत्यप्यवगन्तव्यम् ।

यूरोपीयाद्यतनासु भाषासु लिथ्वान्या इत्याख्यस्य रूसस्यान्यतमपश्चिमप्रदेशस्य पूर्वीयूरोपस्य वा भाषा सर्वथा संस्कृतसमानैवेति सर्वे जानन्ति । रूस्यां बुल्गार्यां च प्रभूतं संस्कृततत्त्वं स्पष्टमवलोक्यते । आंग्लशर्मण्यादिट्यूटानिक्यो भाषा अपि प्रभूतं संस्कृततत्त्वं वहन्ति । तद् यथा—

सं० अस् अं० is धातोः शर्मण्यां एवं रूपाणि जायन्ते —

	ए० व०	ब० व०
प्र० पु०	इस्ट (ist)	ज़िन्ट (sind)
म० पु०	बिस्ट (bist)	ज़ीट (seid) (स्थ)
उ० पु०	बिन (bin)	ज़िन्ट (sind)

अत्र 'बिस्ट', 'बिन' इति रूपद्वयं भूधातोः । एवमेव सं० भू अं० be, सं० अद् अं० eat, सं० विद् अं० wit, witness, सं० दा, दानम् अं० donate, सं० धा अं० do, सं० वच् वाक्, अं० vocal, सं० वम्, अं० vomit, सं० स्तृ, स्तारः अं० star, सं० वै० स्पश् दर्शने, ते० spectare अं० spectacle, spy inspector; सं० गा(ङ्)गतौ, अं० go; सं० गम् अं० come; सं० पृच्छ, ज० fragen फ्रागेने; सं० पा, पिब, ग्री० पिनेरे, सं० ना, म्ना अभ्यासे अ० meaning; सं० स्मृ अं० memory, memorendum; सं० स्मि अं० smile; सं० सो अवखण्डने, स्यति, विदारयति अं० saw; सं० सीव अं० sew, sewing, सं० ज्ञा अं० know; सं० भृ अं० bear सं० बुध् अं० bid, सं० बध् अं bind, सं० भिद् अं० bite, सं० वल्ग अं० walk, सं० स्पर्ध् अं० sport, —

सदृशाः शतश आंग्लशर्मण्याश्च धातवः संस्कृते विद्यन्ते । अत एवोक्तम्—

१- फूलहिं फलहिं न बेंत, जदपि सुधा बरसहीं जलद' इत्यादिना महाकविगोस्वामितुलसीदास–महात्मना एष एव भावो व्यक्तः ।

धातवः पाणिनिप्रोक्तास्तज्जाः शब्दाश्च भूरिशः ।
व्याप्ता यूरोपभाषासु देहेऽस्मिन् धातवो यथा[1] ॥

न केवलं धातव एवापि तु संज्ञा-सर्वनामसंख्यावाचकोपसर्गनिपातादयोऽपि समग्रासु यूरोपीयेरानीयभाषासु संस्कृतसमाना एव। यूरोपे प्रचलितानि संस्कृतस्य च सर्वनामानि समानान्येव विद्यन्ते[2] ।

सर्वनामस्वपि पुरुषवाचकसर्वनाम्नां वैशिष्ट्यं सुविदितमेव । तेष्वपि उत्तमपुरुषवाचकः 'अस्मत्' मध्यमपुरुषवाचको युष्मच्च प्रामुख्यं भजेते । अत एव समग्रासु संस्कृतसजातीयभाषासु सर्वनाम्नां समानत्वप्रतिपादनावसरे प्रथमम् उत्तममध्यमपुरुषयोर्ग्रहणं समुचितं भाति । संस्कृते उत्तमपुरुषवाचकास्मच्छब्दस्य प्रथमैकवचने 'अहम्' द्विवचने 'आवाम्' बहुवचने च 'वय'मिति रूपाणि सन्ति । एवमेव युष्मच्छब्दस्य 'त्वम्' 'युवाम्' 'यूय'मिति रूपाणि निष्पद्यन्ते । परं द्वितीया-चतुर्थी-षष्ठीति-विभक्तित्रये 'मा', 'नौ', 'नः', 'त्वा', 'वाम्,' 'व' इति वैकल्पिकानि अनुलग्नानि लघु (Inclitic) रूपाण्यपि संस्कृते सुप्रयुक्तानि सन्ति । ग्रीकलेटिनजर्मनांग्लरूसीफारस्यादिसंस्कृतेतरासु भारोपीयभाषासु क्वचिद् लघुरूपाणि, क्वचिच्च पूर्णरूपाणि एवावलोक्यन्ते । परं संस्कृतस्यैतद्वैशिष्ट्यं यदत्रोभयविधान्यपि रूपाणि सुरक्षितानि सन्ति ।

अपि च, नानाभारोपीयासु भाषासु अस्मद्युष्मदोरेतादृशान्यपि रूपाणि प्रचलितानि सन्ति, येषां मूलं लौकिकसंस्कृतस्य प्रचलिते रूपजाते क्वचिदपि न दृश्यते, परं ते सर्वे वैदिक 'अस्मे' 'युष्मे' इति अस्मद्युष्मद्वाचका न्निपातादुद्भूताः सन्ति ।

अपि च, संस्कृतस्यैतदपि वैशिष्ट्यं यदस्यामेव वाचि सर्वासु विभक्तिषु सर्वेषु वचनेषु च रूपाणि विद्यन्ते । अन्यासु भाषासु च कानिचिदेव रूपाणि अवशिष्टानि । तद्यथा—

ग्रीक्याम् —अस्मच्छब्दस्य ग्रीक्यां प्रथमैकवचने ईगो (Ego), द्वितीयैकवचने ईमे (Eeme) मा चतुर्थ्यां ईमोइ (Eemoi), मोइ (Moi) (सं० मयि सप्तमी-एकवचनम्) षष्ठ्यां ईमू (Eemou) मू (मे)रूपाणि विद्यन्ते । बहुवचने च प्रथमायां हेमेइस् (Hamais) द्वितीयायां हेमास् (Hemas) चतुर्थ्यां हेमिन् (Hemin) षष्ठ्यां च हेमोन् (Hemon) इति रूपाणि जायन्ते ।

बहुवचनस्यैतानि सर्वाणि रूपाणि वै. 'अस्मे' इत्यस्मादुद्भूतानि इति तु सुस्पष्टमेव ।

१– द्रष्टव्यं-मदीये 'भारूप-भाषाशास्त्र'मित्याख्ये ग्रन्थे ।
२– अवलोक्यतां मदीयो लेखः-ये संस्कृतसजातीयभारोपीय भाषाएँ और इनके सर्वनामों का विकास, "अन्वेषणा" [पृ० २०६]

सं. द्वि' वचन विभक्तिः औ- (आ+उ अपि) द्विवचनस्य परिचायकं उकारं धत्ते।

III सं. युगम् युग्मम्, युगलम्, अं. yoke, हि, जुग, जुगल, जुआ, जोड़ा (युक्तः)

iv सं. यमः यमलः अं. gemini मिथुनम्, युग्मम्, हि. जोड़ा, ।

v ले. secundus अ. second सं. सक्तः इत्यस्यैव प्रतिरूपं विद्यते

सं. त्रि, पुं. ब. व. त्रयः। अवे० थ्रय, थ्रायो, पु. फा. से ग्री. treis त्रेइस ले. tres आयर tri त्री, गॉ. threis थ्रेइस, अं. three जं. dri लिथ. trys त्र्यस स्लाव. trij-e, यास्केन 'तीर्णतमा संख्या भवति'[1] इत्युक्तवता स्पष्टमेव प्रतिपादितं यत् तृ इति धातुप्रकृत्या सह इ—प्रत्यययोगेन तृ+इ=त्रि इति जायते। पाश्चात्यैरप्येषा व्युत्पत्तिः स्वीकृता। त्रिशब्दस्य स्त्रियां सृप्रत्ययान्तः तिसृ कर्ता ब. व, तिस्रः इति रूपं जायते। एष 'तिसृ' शब्दः संस्कृतवत् **अवेस्तायां केल्टिक्यां च अपि च सुरक्षितः**। तद् यथा—

सं. तिस्रः, अवे. तिशरो, आयर teoir, सिमरिक, teir,

सं 'स्वसृ'शब्देऽपि एषः स्त्रीवाचकः 'सृ'प्रत्ययो दृश्यते। एष 'तिसृ'शब्दश्च सं. 'त्रि-स्र' शब्दात् विषमीकरणेन जातः इत्यनुमीयते। तद् यथा—तिस्रः ◀त्रि-स्रः।

स्त्रीवाचकः सं. चतसृ कर्ता ब. व. चतस्रः अपि अनेनैव व्युत्पादितः।

हि० तीन सं. त्रीणि, नपुं. क. ब. व. स तः मागतः, लहन्दा आदि पश्चिमोत्तरीय-भारतीयभाषासु तु' त्रय इति पुं. रूपमद्यापि प्रचलितं वर्तते।

क्रमवाचकः तृतीयः, अवे. थ्रि-त्य, पु. फा. सि-तिय, ग्री. tri-to-s त्रितोस, ले. trit-avo-s, त्रितवोस सिमरिक trydyda, लिथ, treczia-s स्लाव tretiji त्रेतियी, गॉ. thridja, ज. dritto, अं. third◀सं तृतीयः (आंग्ल्यां जार्मण्यां च अन्त्यः यः लुप्तः स च गौथिक्यां सुरक्षितः।)

४ सं चत्वारः प्र. ब. व., अवे. चत्वारो, फा. चहार < Qetvor-es > ले० qua-ttour, > ग्री. tetore, बोएटिक pettares गॉ. fidvor > fior, पु. सैक. fiwar, ए. सैक. feower अं. four, लिथ. keturi, स्लाव०cetyr चेत्यरे। अत्र भारोपीयः ककारः शतं भाषासु वकारे ग्रीक्यां तकारे, गाथिकजर्मनांग्लादि- ट्यूटानिक-वर्गे

१- निरुक्त ३-२

पकारो भूत्वा फकारे परिणतः ।

हि. चार, फा चहारवत् अयं ग्रीक-पैतेरेस-शब्दात् अं. four इत्यत्रापि मध्यग तकारः लुप्तः । स च गाँथिक fidvor फिड्वोर इत्यत्र सुरक्षितः । 'चत्वारः' चलिततमा संख्या[1] इति यास्केन प्रतिपादितम् ।

क्रमवाचकः I सं. चतुर्थः ग्री. tetar-to-s

बोएटिक pctra-to-s ले. quartvs

पु. उ. ज. fior-do, अं fourth, quarter

II सं. तुरीयः, तुर्यः अवे तूइर्यं ktur

५. सं. पञ्च penqe>ग्री. pent ले. quinque ज. गाँ. fimf अं. five, लिथ penki, स्लाव. penti संस्कृतादि शतमुवर्गे अन्तिमः ककारः चकारे ग्रीक्यां च तकारे परिणतः, एवमेव लेटिन्यां आद्यः पकारः ककारे परिणतः ।

गाँ. fimf ज. fimf,-गाँथिकजर्मण्ययो fimf, fimf, funf इत्यत्र मध्यगो ऽनुनासिकः सुरक्षितः स च अं. fiveइत्यत्र लुप्तः, अपि च सं. 'वृकात्' 'वृक्' अं. wolf वत् अत्रापि अन्त्यः भारोपीयः ककारः फकारे परिणतः । स च आंग्ल्यां ब भूत्वा वकारो जातः ।

क्रमवाचकः

सं. पञ्चमः पञ्चथः वेदे, अवे. पुख्थ, फा. पंजम (हि पांचवां) पजक्तअहे, म पंचमांशः, ग्री. pemp-to-s पैम्पतोस, ले. quintu-s> penqto सिम. pimphet, गाँ. fimfta जं. funfte, अं. fifth, लिथ. pentka-s पेंक्तस, स्लाव pentu पेंतु ।

विशेषः — चतुर्थ, पञ्चथ, षष्ठ इत्यत्र क्रमवाचकः त-थ प्रत्ययः एव स्वाभाविकः लौकिक संस्कृतस्य ,पञ्चम' स्य म प्रत्ययस्तु 'सप्तम'स्य अनुकरणवशादागतः इति ज्ञायते ।

भाववाचकः— सं. पंक्तिः (पञ्चानां समूहः) इत्यत्र भारोपीयः ककारः सुरक्षितः । यतो हि स्वरयुक्तककार एव चकारे परिणमति । अं. first मुष्टिः फा. मुश्त हि. मुठ्ठी, मुक्का हि. पञ्जा (पञ्चांगुली युक्तःहस्तः,) अं. finger वस्तुतः पञ्चांगुलयः, अपि एतस्मादेव सं. पंक्ति, अं. finger उभयत्र प्रकृतिः सं पंक penq पेंक्व समाना एव प्रत्ययौ च एकत्र 'तिः' अन्यत्र च अर er इति भेदेन उभयोरपि शब्दयोर्मूलार्थस्तु

१– निरुक्त ३-२

'पञ्चानां समूह' इत्येवास्ति ।

लिथवान्यां स्लावोनिक्यां च penki, penti, सदृशाः गणनावाचकाः शब्दाः सं. पंक्ति इत्येतस्माद् भाववाचकशब्दादेव सम्बद्धाः ।

पञ्चशब्दस्य व्युत्पत्तिः प्रदर्शयता यास्केन उक्तं 'पञ्च पृक्ता संख्या'[1] । वस्तुतः पचि समवायार्थकः पञ्चशब्दो निष्पन्नः । समूहार्थकः 'पंक्ति'शब्दः इत्येतस्य विनिगमकम् ।

६. सं. षट् षष्, यथा षष्ठः <seks, sveks, अवे. ख्शव्श xshvash, फा० शश, ग्री. fex, वैक्स hex हेक्स <sveks, ले. sex, आयर. se गॉ. saish, ज. sedhs अ. six, हि. छह, लिथ, szvrzi, स्लाव shesti

क्रमवाचकः— सं. षष्ठः, ग्री. shekto-s पु. उ. ज. sehto, अं. sixth, ले. sextu-s फा. शशम् हि. छठा, लिथ. szészta-s गॉ. saihsta.

षट् 'पुनः सहतेः'[2] इत्युक्तवता यास्केन सह मर्षणे इत्यस्माद् षट्शब्दस्योत्पत्तिः प्रदर्शिता ।

सं. सप्त, सप्तम, मूलतः मकारान्तः सप्तमशब्दो नव दश इत्यस्य अनुकरणवशात् 'सप्त' इति जातः । अवे. हप्त, फा. हफ्त, पं. सत हि सात, ग्रीक hepta, अल्बा sta-te ले. septem गॉ. sıbun, पु. उ. ज. sibin, लिथ. septyn-i स्लाव. sedmi.

क्रमवाचकः सं. सप्तमः ग्री. hebdomo-s स्लाव. sedmu, ले. septimu-s, पु. उ. ज sibunto फा. हफ्तन् अं. seventh.

यास्केन 'सप्त सृप्ता'[3] इति व्युपत्तिः प्रदर्शिता ।

संख्या—

विशेषः I. septembar सेप्टेम्बर इति आंग्लशब्दो वस्तुतः लेटिन मासनाम्नि सप्तम् इति संख्यावाचकः पूर्वपदः भृ धातोः निष्पन्नः भर् च उत्तरपदे स्थितः एव सप्तमं (मासं) बिर्भात इति सेप्तिम्बरः इति व्युत्पत्तिर्जायते । एवमेव अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर इति विशिष्टानां मासत्रयाणामपि संस्कृतमूलका व्युत्पत्तिः लेटिनमहाकोशे[4] एव प्रदत्ता ।

II– यथा हि. सात इत्यत्र मध्यगः पकारः लुप्तः तथैव जार्मन सैबुन इत्यस्मात् मध्यगस्तकारः लुप्तः ।

सं. अष्टा. अष्टौ <okto-, okatov, अवे. अश्त, फा. हश्त, आर्य. ut. ग्री· okto, ले. octo, पु. आयर ocht लिथ. asztu-n-i, स्लाव. osmi, गॉ. ahtau, अं., eight हि. आठ ।

१- निरुक्त ३-२ २-तदेव ४-४ ३- निरुक्त-४-४ ४- लेटिन डिक्शनरी

क्रमवाचकः— सं. अष्टमः, अवे. अश्तम, फा. हश्शम ग्री. agdoo-s, ले. octavo-s ओक्तावोस हि. आठवां वत् लेटिन्यां octa-vos इति रूपेऽपि मकारस्थाने व-प्रत्ययः दृश्यते। आंग्ल eighth इत्यत्र च चतुर्थवत् क्रमवाचकः थ-प्रत्ययः अवलोक्यते।

विशेषः सं. अष्टा (वेद) अष्टौ इति रूपाभ्याम् प्रतीयते यदस्यार्थः चतुर्था द्विगुणिता संख्या, हि. दो चौक्के इत्यासीत्. एते रूपे द्विवचनान्ते स्तः। अष्टसु इत्यस्मादनुकरणवशाज्जातम्। यास्केन अष्टशब्दस्य अष्टावश्नोते[1] इति व्युत्पत्तिः प्रदर्शिता। सप्तसंख्यातोपि एषा संख्या अग्रे गतास्ति अत एव 'अष्टौ' इत्युच्चते।

९ सं. नव, अवे. नव, फा. नौह, हि. नौ, ग्री. ena, आर्मे. inn, ले. novem, आयर. noin, गॉ. niun अं. nine लिथ. devyn-i, स्लाव. denenti देनेन्ति [redacted] navyni, nouenti, अत्र आद्यः दकारः दश संख्यातः आगतः। अन्त्यप्रत्ययश्च भाववाचकः एव।

क्रमवाचकः— सं. नवम्, नवे, नओम, पु. फा. नवम्, ग्री. eina-to-s, ले non-u-s लिथ. devin-ta-s स्लाव. deven-tu, आयर. nō-mad, गॉ. niun-da तु. ज. niunto, अं, ninth, फा, नोहय, हि. नवां नव एषा संख्या, अभिनवास्ति।

१० सं. दश, अवे. दस, फा. दह dekm, ग्री. deka, ले. decem डेसेम्, आर्य tesn आयर. deich गॉ. taihun, जं. zehan लिथ deszim-t-, स्लाव. dese-n-t देजेन्त, सं. दशत्।

क्रमवाचकः सं. दशमः, अवे. दसेम, फा दहय ग्री. dıkato-s डेक्टोस, ले. decimu-s आयर. dechm-ad, स्लाव, desentu गॉ. taihunda, अं. tenth।

'दश' दस्ता संख्या भवति इति निर्वचनं कृतवता यास्केन प्रदर्शितं यत् दसु उपक्षये इत्यस्यात् धातोः निष्पन्ना 'दश' इति संख्या अन्तिमा उपक्षीणा वा संख्या अस्ति[3] इति। यतो हि अग्रिमा सर्वास्संख्या अनया सह एव हि त्रि-इत्यादिसंख्यानां योगेनैव निष्पद्यन्ते।

एवमेव विंशतिः शतम्, सहस्रम् सदृशाः शब्दा अपि समग्रासु भरोपीयभाषासु समाना एव सन्ति। सं. 'स-हस्र'शब्दो भारोपीय 'घस्लो'—शब्दाज्जातः। तस्मादेव ग्रीक-'खिलिओ' इति जातः। तद्यथा—

सं. स-हस्र भारो घस्रो ग्रीक-खिलिओ। संस्कृत'सहस्र'शब्दे 'स' एकार्थको निपातोऽस्ति सं. सकृत् (एकधा कृत्तं कृतं वा) सदृशेषु शब्देष्वपि एकार्थकः 'स' निपातः सुरक्षितः। अथ च भारोपस्य घेस्लो शब्दान्निष्पन्नाद् ग्रीक'खिलिओ'शब्दादेव अं. kilo हिन्द्यामपि ज्ञात एवाधुना। फा. हज़् हिन्दी हजार शब्दे च एकार्थकः सकारो न विद्यते।

संस्कृतस्य दिदृक्षन्ति स्वरूपं विश्वव्यापृतम्।
एतद्विषयकं ग्रन्थमाद्यन्तं ते पठन्तु मे॥

१- निरुक्त ३-२ २- निरुक्त ३-२ ३- निरुक्त ३-२

एवमेव मध्यमपुरुषस्य प्रथमैकवचने सु (Su) (तु), द्वितीयायां से (Se) (ते), चतुर्थ्यां सोइ (Soi), (त्वयि), षष्ठ्यां सोउ (Sou) (तव, ते) इति रूपाणि सन्ति। बहुवचने च प्रथमायां हुमेइस् Humais, द्वितीयायां हुमास् Humas चतुर्थ्यां हुमिन् Humin षष्ठ्यां च हुमोन् Humon इति रूपाणि जायन्ते।

अत्र हि एकवचने भारोपोयस्य संस्कृतस्य च 'त्व' इत्यस्य तकारः सकारे परिणतः। ग्रीकबहुवचनरूपाणि च वैं० 'युष्मे' इत्यस्मान्निष्पन्नानि।

अथ च, षष्ठीबहुवचनस्य आन् इति प्रत्यय उभयत्र सुरक्षितो वर्तते।

लेटिन्याम् —

लेटिन्यामपि अस्मद्युष्मदोः रूपाणि संस्कृतसमानान्येव सन्ति। तद्यथा —

एकवचनम्

		अस्मद्	युष्मद्
प्रथमा	(कर्ता)	ईगो Eego (अहम्)	तु Tu (तु त्वम्)
द्वितीया	(कर्म)	मे Me (मा)	ते Te (त्वा)
सम्प्रदानम्		मिहि Mihi (मह्यम्)	तिबि Tibi (तुभ्यम्)
सम्बन्धः		मेई Mei (मे)	तुइ Tui (ते)

बहुवचनम्

	अस्मद्	युष्मद्
प्रथमा	नोस् Nos (नः)	वोस् Vos (वः)
द्वितीया	" " "	" " "
सम्प्रदानम्	नोबिस् Nobis (नोभ्यः)	वोबिस् Vobis (वोभ्यः)
सम्बन्धः	नोस्त्रम् Nostrum (नः)	वोस्त्रम् Vostrum (वः)

अत्रापि वयम्, यूयम् इत्येताभ्यां सम्बद्धानि रूपाणि विलुप्तानि केवलं नस्, वस् इति अनुलग्नानि लघुरूपाणि एव प्रयुज्यन्ते।

अथ च, नोबिस् Nobis (नोभ्यः) सदृशेषु वस्नसोः परतः 'भ्य' इति विभक्तिः प्रयुज्यते।

जार्मण्यां—

ट्यूटानिक (जर्मन) वर्गस्य गॉथिक- जर्मनांग्लभाषास्वपि अस्मद्युष्मदोः एतादृशान्येव रूपाणि जायन्ते —

	एकवचनम्	बहुवचनम्
विभक्ति	(भारो० सं० गॉथिक जर्मन अंग्रेजी)	(सं. गॉथिक जर्मन अंग्रेजी)
प्रथमा (कर्ता)	egho, अहम्, इक Ik, इस Ich आई I त्वम् थु thu, डु du, दाउ thou,	वयम्, वेइस Veis, विर wir, वी we यूयम्, युस yus, इर Ihr, यू you.
द्वितीया (कर्म)	मा, मिक mik, मिख mich, मी me, त्वा, थुक thuk, डिख् dich दी thee.	नः, अन्सिस unsis, उन्स uns us. लुप्तः………
सम्बन्ध	मे, मेइना meina, मिर mir, my, mim ते डिर dir, दाइन thine	नस्, अन्जर unsara, अन्जेर unser, अवर our. यूष्मे, इज्वेरा izvara, यूस euch, योर your.

एवमेव तद् शब्दः लेटिन्यां इस-ते इति जायते। इदं शब्दश्च पुंसि इस Is स्त्रियां एस Es इति रूपमापद्यते। नपुंसके च इद् इत्येवास्ति। किम् शब्दस्य लेटिन्यां que, quae, quad क्वेद इति रूपाणि जायन्ते। अस्यार्थश्च यः, यत् इत्यस्ति।

लेटिनस्य संस्कृतस्य विभक्ति-प्रत्यया अपि संस्कृतसदृशा एव सन्ति। तद्यथा —

	एकवचनम्		बहुवचनम्		
	[संस्कृतम्]	लेटिन०	[संस्कृतम्]	लेटिन०	
प्रथमा	विभिन्नप्रत्ययाः		अस्	es	एस्
द्वितीया	अम्	em एम सं.	अस्	es	एस्
चतुर्थी	ए	i इ (सप्तमीविभक्तौ)	एभ्यः	ibus	इबुस्
पंचमी	अस्	e ए (चतुर्थीविभक्तौ)	एभ्यः	ibus	इबुस्
षष्ठी	अस्	is इस्	आम्	um	उम्

एवं स्पष्टं प्रतीयते यद् यूरोपीयासु प्रत्नासु नवासु च भाषासु पारसीकावेस्तयोश्च **संज्ञासर्वनामक्रियापदानि** सर्वथा संस्कृतसमानान्येव सन्ति[1]।

-१ विशेषेणैतद्विषयेऽवलोकनीयम् — मदीये "भारूप-भाषाशास्त्रे"।

संख्यावाचकशब्दानां संस्कृतसमानत्वम्

सर्वासु सजातीयभाषासु संख्यावाचकाः शब्दाः संस्कृतसदृशा एव विद्यन्ते। अपि च **'एकद्वित्रि-पञ्चदश-शतम्'** इत्यादि आपाततः अव्युत्पन्नवत्-प्रतीयमानानां संख्यावाचकशब्दानां व्युत्पत्तयोऽपि आचार्ययास्केन प्रदर्शिताः। ता एवानुसरद्भिर्वाकरनेगलादिभिः शार्मण्यैः आचार्यैः एषां शब्दानां व्युत्पत्तयः तुलनात्मक-पद्धत्या वैज्ञानिकरूपेण निर्धारिताः। यथा —

(१.) क एकवाचकः सं० एकः, अवे० अएं-व, ओइव, पु. फा० अइव, लेटिन तथा ग्रीक ओइनोस oi-no-s, aces, ले. oinos, unu-s, oeno-s पु. आयर oe-n, गॉ. ainas, लिथ. o-e na-s पु. उ. ज. ein, वल्ग. i-nu, अं. one, फा. यक इत्यादि सर्वेषां शब्दानां एतदर्थिका प्रकृतिः ए oe, oi, ae,, ai एव विद्यते।

प्रत्ययास्तु 'न' 'व' 'क' इति त्रयः। अनेन प्रतीयते यत् यूरोपीयभाषासु सर्वत्र न प्रत्ययः विद्यते। अवेस्तायां पु० पारस्यां च व तथा संस्कृते फारस्यां च क प्रत्ययः।[1]

एतदर्थकाः एषा ए (oe, ae.) प्रकृतिः संस्कृतस्य 'एतद्' शब्दे अथ च 'एनम्' सदृशेषु अनुलग्नेषु प्रत्यक्षतयाऽवलोक्यते।

अनेन सुस्पष्टं ज्ञायते यत् सं एकः अथ च अं. one सदृशा सर्वथा भिन्नाः प्रतीयमाना अपि शब्दा मूलतः एकस्या एव प्रकृतेः प्रत्ययभेदेन निष्पन्नानि नानारूपाणि सन्ति।

(१. ख.) सं. सम् = sem।

सहार्थकः सम्, (स) निपातोऽपि नानाभाषासु एकार्थे प्रयुज्यते। यथा - सं. स-कृत् (एकधा कृत्तं, छिन्नम्) स-हस्रसदृशेषु शब्देषु एकार्थकः स निपातः प्रत्यक्षतो दृश्यते। एवमेव ग्रीक hen < hem, monux मोनुक्ज (एकनखः) ले. अ. simple, simplex, sin-gule (एकदा, एकवारम्) अं. single, गॉ० simdle

क्रमवाचकः

फा. यकम् (प्रथमः) एज. गुज. एकम् (प्रतिपत्तिथिः) इत्यपवादं विहाय संस्कृतसजातीयभाषासु कुत्रापि एकशब्दानिष्पन्नः 'एकमः' इति क्रमवाचको शब्दो नावलोक्यते, अस्य स्थाने सर्वत्र सं. प्रथमः (पूर्वः) अं. first, ग्री. protos, सदृशाः शब्दा विद्यन्ते। एतेषां सर्वेषां शब्दानां प्रकृतिः पृ, प्र पेर per विद्यते। अनया व प्रत्यययोगेन सं. पूर्वः,

---

१- एतद् शब्दस्य निर्धारणार्थक 'एकारोऽपि यास्केन आ+इ इति रूपेण व्युत्पादय तोक्तं— 'एकः इता (आ-इता) संख्या' — निरुक्त ३-२, एषा संख्या सर्वासु संख्यासु-समन्वितास्ति इति।

पूर्वीयः, स्लाव० pri-ou अवे. पोउरविय, ग्री. प्रोतोस pro-to-s ◄ prof-atos प्रोवतोस् (पूर्ववर्ती) शब्दाः निष्पाद्यन्ते । गॉ. frauj (अधिपतिः), उ. ज. fro, (अधिपतिः ।)ज. frau (स्वामिनी महिला lady) ◄ pro-vo सदृशाः शब्दा अपि अनेनैव सम्बद्धाः । गा. fruma ओ. सैक. forma, ले. primu-s अं. primo, prime ग्री. promo-s (अग्रणी, नेता, राजा, राजकुमारः, राजकुमारी) शब्दाः पृ, प्र इति प्रकृत्या सम्प्रसारणितेन गुणितेन वा रूपेण सह मप्रत्यययोगेन सं. प्रथम, अवे. फ्रतेम, पु. फा. फ्रतम सदृशाः शब्दाः तमप्रत्यययोगेन पु. उ. ज. fuirst, अं. first सदृशाः शब्दाश्च इष्टप्रत्यययोगेन निष्पाद्यन्ते । आंग्ल्यां एकार्थकः a निपातोऽपि वर्तते ।

२. सं. द्वा द्वौ (पुं.) द्वे (स्त्री-नपुं०) अवे० द्व दुइएं (स्त्री) ले; ग्रीक duo, दुओ, लिथ. du दु, ले. duae स्त्री. आयर dau, do दौ, गॉ. tvai त्वइ, tva त्व (नपुं) tvos (स्त्री.), उ. ज. zwene, अं. two, ले. du-plu-s du-plex, अं. duplicate, double, doubt, पु. उ. ज. zweho,, सदृशानां शब्दानां प्रकृतिः du दु एव विद्यते ।

सं. द्विकः (द्वि सहितः consisting of two), अं. twig (शाख) ए. सैक. twi-z.

I सं. द्वि dvi स. द्विपद् ग्री. dipous, ले. di-pes, ए. सैक. twi- fete, उ. ज. zwi- valt, अं. twilight twin (युग्म) सदृशेषु शब्देषु समस्तेषु ताद्धितेषु शब्देषु द्वा द्वँ, द्वौ इत्यस्य स्थाने 'द्वि' शब्दो दृश्यते । तत्र आकारस्थाने इकारस्तु त्रि इत्यस्य अनुकरणवशाद आगतः इत्यनुमीयते ।[1]

यास्केन द्वौ द्रुततरा संख्या[2] इत्युक्तं परं आधुनिकाः दूरङ्गता संख्या इति व्युत्पादयन्ति ।

क्रमवाचकः सं द्वितीयः, अवे. बित्य, गाथा. दबित्य पु. फा. दुबीतिय, ग्री. deuteros देउतेरोस, दूरंगतः एषः ग्रीक देउओमइ deuomai, सं. दूर इत्यनेन सम्बद्धः अनेनापि यास्कप्रतिपादिता 'दूरंगता' इति व्युत्पत्तिः समर्थ्यते ।

II सं. उभ. ले. emphos ? गॉ. an-thār पु. उ. ज. andar लिथ. antra-s स्लाव. vuto-u. सं. उभा, उभौ इत्यत्र 'उ' उभयार्थका प्रकृतिः भश्च प्रत्ययः । सदृशेषु शब्देषु उ-प्रकृतिरेव अन्, अम् रूपं भजते ।

१- अं. two इत्यस्योच्चारणं 'टू' इति क्रियते परं वर्तनीतः 'द्वा' इत्यस्य प्रतिरूपा एव विद्यते ।

२- निरुक्त० ३-२

-सत्यम्—

एषा वेदकथा नूनमद्भुता सरसा नवा।
श्रावं-श्रावं वेदवृत्तं जायते पुलकोद्गमः ॥१०॥

अनेन मम स्वामिना तु लोकमान्य तिलकायापि ऋग्वेदस्य खण्डषट्कमुपहाररूपेण प्रेषितम्।

मूलरः—अद्भुतं खलु तिलकस्य पाण्डित्यम्। तस्य वेदकाल निर्णायिकां ओरायन मृगशीर्ष (orian) इति नाम्ना विख्यातां लघीयसीं पुस्तिकामवलोक्य जाता मे मनसि श्रद्धा तस्मै विद्वद्वराय।

जार्जिना—अथ च पत्रपत्रिकासु लेखजातं लिखित्वा इल्बर्ट विधेयकस्यापि भूयसा प्रयत्नेन समर्थनं विहितमनेन मे स्वामिना। यद्यपि सर्वैरांग्लैर्विधेयकस्यास्य प्रबलो विरोधः कृतः।

मूलरः—भारते स्थितवतामांग्लाधिकारिणामभियोगश्रवणाधिकारोऽधिगतो भारतीयन्यायाधीशैरनेनेल्बर्ट विधेयकेन।

विवेकानन्दः—विद्वद्वर! भारतमस्मान् किमुपदिशतीति पुस्तकं भवतो भारतभक्त्याद्यन्तमाप्लावितं वर्तते। तदधुना भवान् भारतं कदागमिष्यति?

मूलरः—स्वामिमहोदय! अत्र विषये एतदेवास्मिवक्तुकामः—

वाराणस्यां निवासश्च गङ्गाम्भसि निमज्जनम्।
वेदवेदान्तपाठश्च त्रयमेतत् प्रियं मम॥

अथ च (**सगद्गदम्**)

भूयो नात्रागमिष्यामि यास्यामि यदि भारतम्।
तत्रैव दाहसंस्कारः कर्तव्यो मे भवादृशैः ॥११॥

स्यान्नाम यावत् कानिचिन्नवीनानि पुस्तकानि कक्षान्तरात् समादायागच्छामि, तावदेतत्पुस्तकजातमवलोकनीयमत्रभवद्भ्याम्। (**इति प्रस्थितः**)

स्टर्डी—पुस्तकप्रचय एषो मोक्षमूलरविरचितः सम्पादितो वा। यथाहि—एतदस्ति मोक्षमूलरसम्पादितं ऋग्वेदखण्डषट्कम्। अयञ्चास्यैव द्वितीयसंस्करणस्य प्रथमः खण्डः। एषः पुरातन संस्कृत साहित्येतिहास एतच्च संस्कृतव्याकरणम्। एतत्सानुवादं

सटिप्पणञ्च ऋग्वेदप्रातिशाख्यम् । एतानि च
आफ ईस्ट इत्याख्यग्रन्थमालाया पञ्चाशत्खण्ड
चिप्स फ्राम जर्मन वर्कशॉप इत्याख्यं लेख संकलन
ग्लासगो विश्वविद्यालये गिफ्फोर्ड व्याख्यान माल
भाषणानां पुस्तकरूपेणमुद्रितं एन्थ्रापोलोजिकल रिल
फिज़ीकल रिलीजन खण्ड त्रयम् एषा च अस्य महानुभाव-
स्यात्मकथा । एतच्च आई० सी० एस० पदेनियुक्तानां
भारतीयशासकपदं गृहीतु जिगमिषुणामांग्लाधिकारिणां
प्रबोधनाय भारतस्य वास्तविकरूपस्य परिचयप्रदानाय
प्रदत्तानां व्याख्यानानां । इण्डिया ह्वाट इट केन टीच अस इति
नाम्ना प्रकाशितं संकलनम् । एतच्च दी वेदान्त फिलॉसफी
नामकं विख्यातं पुस्तकम् ।

विवेकानन्दः —मोक्षमूलरस्य तु समस्तमेव जीवनं संस्कृतानुरागमनु-करणीयाञ्च भारतभक्ति व्यनक्ति । यादृशेन भारतप्रेरणा-प्लावितोऽयं तस्य शतांशमप्यस्माभिर्लब्धं स्यात् । अपरा विद्यया परां विद्यामधिजिगमिषतोऽस्योपनिषत्तत्त्वज्ञस्य वेदविदुष आवासं प्राप्यैवमनुभवामि यद् वसिष्ठस्यारुन्धतेश्चाश्रमपद-मेवागतोऽहमधुना ।

स्टर्डी—मयाप्येवमेवानुभूयते ।

विवेकानन्दः —स्टर्डीमहाभाग ! दृष्टं भवद्भिर्भारतागमनस्य चर्चायामु-पस्थितायां मोक्षमूलरस्य नेत्रद्वयमश्रुसिक्तंजातम् । नूनमनेन पूर्वजन्मनि केनापि पण्डितेन भाव्यम् :—

"तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ।"

मूलरः —(प्रविश्य) अहो ! कालिदासः स्मर्यते—

"रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः ।"

स्टर्डीमोक्षमूलरौ —तच्चेतसा स्मरतिनूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ।

जार्जिना —स्टर्डीमहोदयोऽपि संस्कृते प्राविण्यं भजते ?

नोनारायणाय । कल्याणमस्तु । पुण्यशीले !
प्तं भवत्या पूर्वजन्मनि ।

—महात्मन् ! न केवलं पूर्वजन्मन्यपित्वस्मिञ्जन्मन्यपि षड्
वर्षाणि प्रतीक्षाजनित तापं तप्त्वैव…

मूलरः—(सस्मितम्) आवयोरुद्वाहेनैकसूत्रता जातेति वाक्यशेषः ।

(सर्वे हसन्ति)

विवेकानन्दः—वेदज्ञवर ! भवता स्वयौवनारम्भे त्रयोविंशतितमे वर्षे सायणभाष्यसहितस्य ऋग्वेदस्य सम्पादनं मुद्रापणञ्चारब्धम् । तच्च एकोनपञ्चाशत्तमे वर्षे समाप्तिमगात् । इत्यहं जानामि ।

मूलरः—स्वामिपादा अपि च चरमे वयसिविद्यमानस्य मेऽधुना नास्ति तथाविधा शक्तिस्तथापि—

प्रकाशनाय वेदस्य रम्यं संस्करणं नवम् ।
विजयनगराधीशः प्रायच्छत्पुष्कलं धनम् ॥६॥

अतएवाधुना सम्यक् सम्पाद्य संशोध्य च विशालाकारपृष्ठानां खण्डचतुष्टयेन ससायणभाष्यस्य ऋग्वेदस्य द्वितीयसंस्करणस्य प्रकाशनमारब्धम् ।

विवेकानन्दः—पूर्वं विजयनगरस्यैव सम्राजा कृष्णराजद्वितीयेनाचार्य सायणः ऋग्वेदस्य भाष्यनिर्माणायाधुना च तस्यैव विजयनगरस्यमहाराजेन सायणभाष्यस्य सुरम्यरूपेण पुनः प्रकाशनाय भवांश्च प्रेरित इति तु युज्यत एव ।

रः—अथ चानेन विजयनगरमहाराजानुदानेन—

उदाराः कर्मशूराश्च वाक्शूरा न हि केवलम् ।
विद्यन्ते भारतीया हि ज्ञातं सर्वैर्जनैरिह ।७।

र्या—सायणभाष्यसहितस्य ऋग्वेदस्य द्वितीयसंस्करणस्य प्रकाशनायैकेन भारतीयेन विजयनगरमहाराजेन द्रव्यं दत्तमिति तु युज्यते । परमस्य प्रथमसंस्करणस्य प्रकाशनायेस्टेण्डिया कम्पनी कथं प्रावर्तत ? इत्यस्तिजिज्ञासितम् ।

मूलरः —सम्यक् पृष्टम् ।

सायणभाष्यस्य प्रकाशनाय श्रीबर्नूफमहो[illegible]
प्रयतितम् । श्रीमताचार्यबॉथलिंगकमहोदयेन [illegible]
पिटर्सबर्ग अकादमीतः ससायण-भाष्यं ऋग्वेदं प्रकाशयितुं [illegible]
परन्तु मम नाम्ना सह तस्यापि नाम सम्पादकरूपेण प्रकाशयि-
ष्यते । तच्च मया न स्वीकृतम् । श्रीमता बॉप्पमहोदयेनापि
बर्लिनतः सायणभाष्यप्रकाशनायोत्साहः प्रदर्शितः । परं तेन
लिखितं यत् सम्पूर्णोभाष्यस्तु बृहदाकारोऽस्ति । तस्य संक्षेपो
विधातव्यः । मयैतदपि न स्वीकृतम् । तदैवाहमिण्डिया-हाउस-
स्थितानां भाष्यपाण्डुलिपिनामध्ययनाय लन्दनमगच्छम् ।
तत्रांग्लदेशस्थः प्रशियाराजदूतः परमप्रभविष्णुः सुगृहीतनाम-
धेयो मम पितुमित्रः तेनैव क्रमेण च ममापि परिचितः बुन्शेन
महाभागस्तदा लन्दन एवासीत् ।

स्टर्डी —एवमेवम् ।

मूलरः —सायणभाष्यस्य प्रकाशनस्य मम योजनां श्रुत्वासौ महाभागो
मुमुदेतराम् । 'कम्पनी व्यतिरिक्तं केनचिदन्यदेशीयेन सर्वकारेण
भारतस्यायं गौरवग्रन्थश्चेत् प्रकाशितः स्यात्तदा कम्पनीकृते
लज्जाया एव विषयोऽभविष्यदिति' कृत्वा प्रेरिताः श्रीबुन्शेन
महाभागेन कम्पनीनिदेशकाः योजनां मे कार्यरूपे परिणमयि-
तुम् । समारब्धे भाष्य प्रकाशन कार्ये च केवलं द्विवारं वर्ष-
द्वयस्याभूद्व्यवधानम् ।

स्टर्डी —को व्याघातो जातः ?

मूलरः —प्रथमं भारते सैन्यविद्रोहवशादीस्टेण्डियाकम्पन्यधिकारिणो
भाष्यप्रतिलिपिनां प्रेषणेऽसमर्था अभवन् । एकदा च जाते पोत-
भंगे भारतादानीयमानाः पाण्डुलिपयः सागरे सञ्जाताः ।

जार्जिना —तदेवम्—

पञ्चविंशतिभिर्वर्षैस्तद्गतेनान्तरात्मना ।
अतन्द्रितेन मे भर्त्रा ऋग्वेदोऽभूत् प्रकाशितः ॥८॥

स्टर्डी —रुचिरा साहसिका सुदीर्घकालव्यापिनी चैषा वेदकथा ।

पहला अंक

विद्या-वेदवाणी ब्राह्मण अर्थात् वेदज्ञ विद्वान् के पास आयी और बोली—निरन्तर स्वाध्याय व कुल परम्परा में पठन-पाठन के द्वारा तू मेरी सदा रक्षा करते रहना, क्योंकि तेरी निधि तो मैं ही हूं। तू मुझे कामी, कुटिल, कदाचारी और ईर्ष्यालु के हाथ में मत पड़ने देना ताकि मेरी शक्ति और सामर्थ्य सदा बनी रहे।

(मन्त्र के उत्तरार्ध की ध्वनि धीरे-धीरे मद्धिम पड़ती है और ये श्लोक सुनाई देने लगते हैं)

वाक् और अर्थ का वर देने वाली, रम्य इसीलिए नित्य नवीन तथा वाणी और अर्थ में ही जिसका प्रत्यक्ष रूप प्रटक हो रहा है अथवा जो वाक् और अर्थ या शब्दार्थ की जीती-जागती मूर्ति है, जो प्रकाशस्वरूप है, या भारोपीय भाषाएं ही जिसका स्वरूप हैं वह भव्य भारती सज्जनों के लिए सदा श्रेयस्करी हो ॥ १ ॥

जिसने यूरोप के लोगों को, वहां के सम्राटों-सम्राज्ञियों, राजाओं-राजपरिवारों तथा राज्याधिकारियों को भारत के (उदात्त) चरित्र और यहां की प्रज्ञा से परिचित करवाया ॥ २ ॥

जिसने सायण भाष्य के साथ सम्पूर्ण ऋग्वेद प्रकाशित किया,आज सारे विश्व में उस मोक्षमूलर भट्ट का यश फैल रहा है ॥ ३ ॥

(इस नान्दी—मंगलाचरण के बाद सूत्रधार और नटी का प्रवेश)

सूत्रधार—आर्ये ! सुप्रभातम् ।

नटी—सुप्रभातम्, नाट्यविशारद ! यह क्या पुस्तक है ? **(पुस्तक को देखकर)** वाह, आजकल महात्माजी की आत्मकथा पढ़ी जा रही है।

सूत्रधार—क्यों नहीं, पूज्य बापू ने अपनी इस आत्मकथा में मैक्समूलर की एक पुस्तक की विशेषरूप से चर्चा की है। महात्माजी ने लिखा है कि अफ्रीका में रहते हुए उन दिनों मैंने "भारत हमें क्या सिखा सकता है' नामक मैक्समूलर की पुस्तक बड़े चाव और उल्लास के साथ पढ़ी थी।

नटी—और हां—

मैंने भी 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मेरे उस अधिकार को कोई नहीं छीन सकता', इस महामन्त्र के उद्घोषक लोक-

मान्य तिलक के जीवन में पढ़ा है कि मेक्समूलर के
सम्राज्ञी विक्टोरिया ने उन्हें (लोकमान्य तिलक को)
आज्ञा प्रचारित की थी।

सूत्रधार—हां, याद आया, उसी महाप्राण मोक्षमूलर भट्ट के जीवन की
'मोक्षमूलर वैदुष्य' नामक भवानीशंकर त्रिवेदी का रचा हुआ नया नाटक
हम आज प्रस्तुत करने जा रहे हैं। तो सब कलाकार तैयार हो जाएं।

(सभा की कानाफूसी के बीच वेदमन्त्र की-सी ध्वनि सुनाई देती है।)

हैं, यह क्या, मेरे निवेदन करते-करते ही यह कैसी ध्वनि सुनायी देने लगी। **(कान लगाकर)** हां, समझ गया—यह तो ग्रामोफोन बनाने वाली कंपनी की इस प्रार्थना पर कि एडीसन के इस नये आविष्कार के द्वारा हम सबसे पहले आपके बचनों को ही रिकार्ड करना चाहते हैं, स्वयं मोक्षमूलर वेदमन्त्र पढ़ रहे हैं।

(इति प्रस्तावना)

पहला दृश्य

स्थान—ग्रामोफोन कम्पनी की ओर से लंदन में आयोजित हुआ। रेकार्डिंग उपकरण भी दिखायी पड़ते हैं।

(यन्त्र के सामने मोक्षमूलर—ॐ अग्निमीड़े इत्यादि मन्त्र पढ़ रहे हैं।)

आयोजक—वेदज्ञवर, आज आपने हमारे ग्रामोफोन के लिए सर्वप्रथम वेदवाणी रिकार्ड करवायी। आपसे वेदमन्त्र सुनकर हम कृतकृत्य हुए।

मोक्ष : यह तो स्वाभाविक ही था, क्योंकि मेरा तो जीवन हीं वेद के लिए समर्पित है और वेदमय है। इसीलिए मैंने आपके लिए सर्वप्रथम ऋग्वेद का यह प्रथम मन्त्र ही रिकार्ड करवाया।

आयोजक—किन्तु हम चकित हैं कि आपने यूरोप में रहते हुए ही संस्कृत का ऐसा ज्ञान कैसे प्राप्त कर लिया।

मोक्ष—मैंने संस्कृत कैसे पढ़ी, यह तो प्रायः सभी लोग जानना चाहते हैं। वास्तव में लाइपज़िग विश्वविद्यालय में स्नातक परीक्षा के त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम में

किम् । मया भारत एवाधीता संस्कृत भाषा । स्वामि-
दानां सान्निध्येन च समृद्धतरं जातं मे संस्कृतज्ञानम् ।

विवेकानन्दः —महाभाग ! अद्यत्वे खलु विश्वस्मिन्नपि विश्वे पूज्यन्ते मे गुरुवः श्रीपरमहंसपादाः ।

मूलरः —युज्यत एवेतद् । यतो हि—

रामकृष्णं महात्मानं प्रत्यक्षं धर्मविग्रहम् ।
विहाय कोऽन्यः पुरुषः पूजनीयो भवेदिह ॥१२॥

एतदस्ति मे नवीनं प्रियञ्च पुस्तकम् पश्यन्तु स्वामिपादाः ।

विवेकानन्दः—(**विलोक्य**) अहो ! एतत्तु मम गुरुवर्यपूज्य परमहंस पादानां भवता लिखितं जीवनचरितम् । सुतरां प्रीतोऽस्म्यनेनाहम्, महानुभाव ! किमत्रभवते प्रत्युपकरोमि ?

मूलरः—स्वामिन् ! लब्धं महामहिम्ना जर्मनसम्राजा महामान्यया सम्राज्ञीविक्टोरियया च सर्वोच्चमलंकरणम् । अधिगता प्रीवीकौंसिलस्य सदस्यता । अर्जितं प्रभूतं यशः । प्राप्तश्च भारतीयविदुषां भवादृशाणां महात्मनाञ्चानिन्द्यः प्रेम । सर्वमेवाधिगतं भगवत्प्रसादात् । किमतः परं स्यात् । तथापि यदि वाग्देवता प्रसीदति तदा कालिदासानुगामि मे वचनमस्तु—

भरतवाक्यम्

प्रवर्धतां भरतभुवोऽत्र गौरवं सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ।
बुधोत्तमो गुणगणगौरवादृतः समग्रविश्वहितकरः प्रमोदताम् ॥

(**इति निष्क्रान्ताः सर्वे**)

इति तृतीयोऽङ्कः

(समाप्तञ्चेदं मोक्षमूलरवैदुष्यं नाम नाटकम्)

और हां, मैं तो यह भी समझता हूं कि एक दिन तुम्हारे कारण इस लाइपज़िग विश्वविद्यालय का नाम रोशन होगा।

सब—गुरुजी, हम भी आप से संस्कृत पढ़ेंगे। अब तो संस्कृत जरूर पढ़ेंगे।

(कक्षा की समाप्ति के साथ सभी चले जाते हैं।)

तीसरा दृश्य

स्थान—जर्मनी के डेस्साउ नगर में मैक्समूलर की गृह-वाटिका।

(मूलर त्वामालिख्य···आदि श्लोक सस्वर पढ़ता है।)

अग्रजा—भैय्या, तुम क्या गा रहे हो?

मूलर—दीदी, आसमान में घिरी घटाएं देखकर मेरा मन मेघदूत पढ़ने को हो आया। देखो तो हमारे यहां ये कैसे ठिठुरे-से एक सरीखे बादल हैं। सूरज की किरणें जिस पर छितरा रही हों, ऐसे सुरमे के पहाड़ से लगने वाले नीलकमल-मनोहर कालिदास के बादलों का तो कहना ही क्या! ठीक तो है—

जिस पर सूरज की तिरछी किरणें पड़ रही हों ऐसे सजल बादल, या कालिदास के शब्दों में 'वल्मीक' के बिना भला रत्नों के ढेर के जैसा जगमगाता इन्द्रधनुष कैसे दिख सकता है।

अग्रजा—सचमुच, संस्कृत बड़ी प्यारी भाषा है। एक बार फिर सुना तो···

मूलर—दीदी, तुम कहो तो एक बार क्या दस बार सुना दूं। **(त्वामालिख्य··· आदि श्लोक फिर पढ़ता है।)**

अग्रजा—काश! मैं इसका अर्थ भी समझ पाती।

मूलर—दीदी, यही सोचकर तो मैंने कालिदास के इस गीतिकाव्य 'मेघदूत' का जर्मन भाषा में पद्यानुवाद करना प्रारम्भ कर दिया है।

अग्रजा—बहुत खूब, तुमने मेघदूत का पद्यानुवाद करना शुरू कर दिया, यह बहुत अच्छा किया। यूं संस्कृत और जर्मन ये दोनों भाषाएं मिलती-जुलती सी है।

मूलर—तुम ठीक कह रही हो। इन दोनों भाषाओं में समानता ही नहीं

एकात्मता भी है। (यहां मूलर संस्कृत और जर्मन भाषा के कु
बताता है। और कहता है कि इस प्रकार संस्कृत और जर्मन
भाषाओं की इस एकरूपता के कारण ही है इतना जल्दी संस्कृत पढ़
गया।)

अग्रजा—अब तो मेरे मन में भी संस्कृत सीखने की ललक जाग उठी है।

मूलर—एक बात और सुन···

अग्रजा—मैं क्या सुनूं, तू मेरी बात सुन और सुनकर उस पर कुछ ध्यान दे।

मूलर—बता क्या कहना चाहती है।

अग्रजा—भैया, तुमसे क्या छिपा है। वैधव्य के असह्य दुःख को सहकर भी हमारी मां ने बचपन से लेकर आज तक हमें खूब पढ़ाया-लिखाया और सब तरह से सुखी रखा। और यह भी कि यहां के ड्यूक से जो नाम मात्र की पेंशन मिल रही है, उससे और हमेशा प्रथम रहने के कारण तुम्हें मिलने वाली छात्र-वृत्ति से अपना अब तक गुजारा चलता रहा। लेकिन अब मां सोचती है···**(देखकर)** लो, वह तो इधर ही आ रही है।

मूलर—**(गद्‌गद् होकर)** मां ! देख, मेरी यह पुस्तक !

माता—बेटे, तेरी एक पुस्तक को क्या देखूं ? तेरी तो बहुत-सी पुस्तकें हैं।

मूलर—भगवान् करे तेरी बात सच हो, मां। यह तो संस्कृत के हितोपदेश का मेरा लिखा जर्मन अनुवाद है। यह आज ही छपकर आया है। इसका यह श्लोक मुझे बहुत अच्छा लगता है। सुन मां, सुन—

जिसका मन सन्तोषी है, समझ लो कि उसे सब कुछ मिल गया। पांव में जूता पहने हुए व्यक्ति के लिए तो सारी धरती पर चमड़ा मढ़ा हुआ है। **(खुशामद के लहजे में)** मेरी मीठी-मीठी मां ! अब मैं चाहता हूं···

माता—तू जो चाहता है सो मैं नहीं जानती बेटे ! पर मैं जो चाहती हूं सो सुन। अब तू पढ़-लिखकर लायक और जवान हो गया है। इसलिए कहीं अध्यापक लग जा ताकि अपने घर की गरीबी मिटे।

मूलर—मां तेरी बात तो ठीक है, मैं कहीं अध्यापक बनकर आना और तुम दोनों का पेट पाल लूंगा, पर मां, तब मेरी संस्कृत का क्या होगा ?

माता—तेरी संस्कृत से मुझे क्या ! अब तुझे चाहिए···

मूलर—मां, तुझे तो मालूम ही है कि लाइपज़िग विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. की स्नातक उपाधि मिलने के बाद मैं संस्कृत और तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के आचार्य श्री फ्रान्त्स बॉप्प से आगे और संस्कृत पढ़ने के लिए उनके पास बर्लिन चला गया था। वहीं मैंने सोचा कि अब मुझे पेरिस

प्रवेश लेते ही मेरे संस्कृत-अध्ययन का श्रीगणेश बड़े मजेदार ढंग से हुआ था।

दूसरा दृश्य

स्थान—लाइपजिग विश्वविद्यालय परिसर।

(छात्र-छात्राएं बातचीत करते हुए घूम रहे हैं।)

एक—यह नया भाषाध्यापक ब्रोकहाउस हमेशा कोई न कोई बेतुकी बात कर देता है।

दो—देखें, आज क्या अनोखी बात बताता है।

तीन—(**देखकर**) अरे वह तो आ भी गया।

एक—खूब रही, इस तीस साल के प्रोफेसर की शक्ल-सूरत और कपड़े तो देखो।

दो—क्या देखना है, सब भाषाध्यापक ऐसे ही होते हैं।

सब—नमस्ते!

ब्रोकहाउस—नमस्कार। चलो भई, क्लास में चलें।

एक—(**धीरे-धीरे**) इसकी क्लास में जाकर क्या होगा?

दो—क्यों नहीं, आज भी कुछ जरूर कोई अनोखी बात कहेगा।

(ब्रोकहाउस के साथ विद्यार्थी कक्षा में आते हैं।)

ब्रोकहाउस—प्यारे छात्रो, आपको मालूम होना चाहिए कि भारत की एक भाषा है······

एक—वाह! क्या कहने, भारत और उसकी भी कोई भाषा?

ब्रोकहाउस—और उस भाषा का नाम है संस्कृत······

दो—हमें क्या, हुआ करे उसका कोई नाम!

ब्रोकहाउस—और वह संस्कृत भाषा हमारी ग्रीक लेटिन और गॉथिक जैसी भाषाओं से बिल्कुल मिलती-जुलती है। वास्तव में संस्कृत इनकी बड़ी बहिन है।

एक—(**धीरे-धीरे**) लगता है आज तो इसने कुछ ज्यादा ही पी रखी है।

ब्रोकहाउस—(**स्वगत**) ठीक ही तो कह रहा है यह क्योंकि मैंने अमर भारती का ऐसा मधुपान कर लिया है जिसे चखकर इस धरती पर रहते हुए भी मनुष्य निर्जर अजर और अमर हो जाते हैं।

मूलर—(धीरे-धीरे) रुको, मैं पूछता हूं। (जोर से) महाशय, सुना जाता है... भारत तो सपेरों का देश है, तो भला भारत की कोई भाषा हमारी ग्रीक ... संस्कृत पढ़... और लेटिन के बराबर है, ऐसा कैसे हो सकता है।

ब्रोकहाउस—हाथ कंगन को आरसी क्या ! यह देखो, बर्लिन विश्वविद्यालय के संस्कृत के आचार्य फ्रान्त्स बॉप्प का लिखा भारत जर्मन भाषाओं का यह तुलनात्मक व्याकरण मेरे हाथ में ही है। इसे जरा पढ़ो तो सही।

मूलर—कौन पढ़े इस पोथे को !

ब्रोकहाउस—तो लो, मैं संस्कृत और ग्रीक के एक जैसे रूप लिखे देता हूं।

(ब्लैकबोर्ड पर लिखता है।)

संस्कृत—अस्तिः स्त सन्ति
ग्रीक— ... ...

एक—(हंसते हुए) जरा देखो तो, जिसकी लिपि ही ऐसी है वह भाषा कैसी होगी।

मूलर—सचमुच, बड़े तमाशे की बात है। ठीक भी तो है—

'जैसे भारत के लोग वैसी उनकी लिपि' ऐसी अनोखी लिपि तो हमने पहले कभी नहीं देखी। देखो न, इन अक्षरों के सींग और पूंछ भी हैं।

दो—अक्षर और वे भी सींग-पूंछवाले। यह भी खूब रही।

(सब हंसते हैं।)

ब्रोकहाउस—(कुछ चकित होकर) विद्यार्थियो इसमें हंसने की क्या बात है। हां समझ गया, यह तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने ही जल्दी में पहले-पहल देवनागरी में लिख दिया। तो लो, अब मैं रोमन में अस् धातु के रूप लिखे देता हूं। देखो—

(चारों भाषाओं के रूप रोमन में लिखता है।)

ब्रोकहाउस—तो आप लोगों ने देख लिया। हैं न ? चारों भाषाओं में एक जैसे रूप। अब तो हुआ भरोसा ? मूलर तुम्हीं बताओ।

मूलर—सचमुच, संस्कृत तो ग्रीक और लेटिन से बिल्कुल मिलती-जुलती है। तब तो मैं भी संस्कृत पढ़ूंगा।

ब्रोकहाउस—अवश्य,'अवश्य। प्रिय मूलर, मैं जानता हूं कि तुम गरीब हो लेकिन परिश्रमी और मेधावी भी हो। ग्रीक और लेटिन तो तुमने पहले से ही पढ़ रखी है। और मैं इन भाषाओं के साथ तुलना करते हुए संस्कृत ऐसे पढ़ाऊंगा कि तुम कुछ ही दिनों में सीख जाओगे।

प्राचीन ईरानी सम्राटों के दुर्बोध कीलाक्षर लिपि में लिखे गए प्राचीन अभिलेखों को भी पढ़ डाला। इससे आज यह भलीभांति सिद्ध हो गया है कि पुरानी फारसी भी संस्कृत का ही एक रूप है।

मूलर—सच कह रहे हो। मेरा तो कहना है—हमारे आचार्य बर्नूफ ने जो कुछ और जितना कुछ पढ़ लिया और वे जिस तरह रात-दिन काम में जुटे रहते हैं, हमें भी उनका अनुकरण करना चाहिए। (**देखकर**) लो, गोल्ड-स्टुकर भी आ पहुंचा। तो आओ आचार्यजी के पास सब साथ-साथ चलें।

दूसरा दृश्य

(भोज-पत्र, ताड़-पत्र और नये-पुराने कागजों पर हस्तलिखित ग्रंथों के ढेर से घिरे आचार्य बर्नूफ कुछ लिख रहे हैं। उनकी तीन बेटियां पुस्तकों और कागज-पत्रों को ठीक-ठाक करने के काम में जुटी हुई हैं।)

तीनों—प्रणाम आचार्यवर !

बर्नूफ—विद्वान् बनो। प्यारे छात्रो ! आप लोग तो जानते ही हो कि तप और स्वाध्याय में लीन भारत के वेदज्ञों ने हजारों वर्षों से वेद सुरक्षित रखे हुए हैं।

मूलर—गुरुवर ! पुस्तक या दूसरे किसी लिखित रूप के बिना ही, एक-दूसरे से सुनकर कण्ठस्थ करते हुए वेदों को अब तक बचाए रखना सचमुच आश्चर्यजनक है। भारतीयों की श्रवण और स्मरण-शक्ति अपूर्व है।

बर्नूफ—तुम ठीक कह रहे हो, किन्तु वेदों की पाण्डुलिपियां तो भारत में भी दुर्लभ हैं। फिर भी यूरोपीय संस्कृतज्ञों के प्रयत्नों से इंगलैण्ड और फ्रांस की सरकारों ने भाष्य सहित वेदों की हस्तलिखित प्रतियां किसी न किसी तरह जुटा लीं और उन्हें अपने ग्रन्थालयों में रख छोड़ा। लेकिन यहां उनका उपयोग कौन करे। मुझे डर है कि ऐसी दशा में यहां भी वे दुर्लभ ग्रन्थ कहीं कीट-भोजन न बन जाएं।

मूलर—तो क्या इस मामले में हम कुछ नहीं कर सकते ?

बर्नूफ—क्यों नहीं, क्यों नहीं। अब हमें ऐसा करना चाहिए कि भाष्यसहित वेद छपकर फिर भारतीयों के हाथों में जा पहुंचे। और इसीलिए यह रूडोल्फ

रॉथ अथर्ववेद और यजुर्वेद के काम में जुटा हुआ है। यह गोल्ड स्टुकर भी ... काम कर रहा है। **(उन दोनों की ओर देखकर)** अच्छा, तुम अपने काम में लग जाओ।

रॉथ और स्टुकर—जैसी गुरुजी की आज्ञा।

बर्नूफ—बेटे मूलर, तुम यहां सबसे छोटे और नये विद्यार्थी हो, इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम्हारा जीवन वेद के लिए समर्पित हो जाए। इससे तुम मेरे बहुत बड़े सहायक बन जाओगे।

मूलर—आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर मैं अपना जीवन वेद के लिए समर्पित करता हूं।

बर्नूफ—वत्स, तेरा देवनागरी लेख बहुत सुन्दर है, इसलिए सबसे पहले तू मेरे द्वारा सम्पादित ऋग्वेद-सायण-भाष्य की एक प्रतिलिपि तैयार करना शुरू कर दे। इसके लिए कुछ पारिश्रमिक भी तुझे मिलेगा। उससे तेरे नाश्ते का खर्च तो निकल ही जाएगा।

मूलर—गुरुजी, मैं तैयार हूं।

बर्नूफ—किन्तु वेदभाष्य की प्रतिलिपि का काम शुरू करने से पहले तुम्हें दो प्रतिज्ञाएं करनी होंगी।

मूलर—बताइये, गुरुजी!

बर्नूफ—पहले तो यह कि सायण भाष्य का सम्पादन करते हुए तुम कभी उसकी कोई एक पंक्ति भी—एक अक्षर भी छोड़ोगे नहीं। दूसरे यह कि मेरे द्वारा सम्पादित वेदभाष्य की नकल करते समय तुम धूम्रपान नहीं करोगे।

मूलर—मुझे गुरुजी की आज्ञा स्वीकार है। सायणभाष्य का सम्पादन करते हुए उसका एक अक्षर भी छूटने नहीं पाएगा। और आपके वेदभाष्य की प्रतिलिपि करते समय धूम्रपान नहीं करूंगा।

बर्नूफ—तो फिर मैं भी चाहूंगा कि यथाशीघ्र तुम अपने आप वेदभाष्य का सम्पादन करने के योग्य बन जाओ। और हां, उसके बाद तुम्हें लन्दन जाना होगा। वहां इण्डिया हाउस के ग्रन्थालय में भी सायण-भाष्य की पाण्डुलिपियां हैं। शुद्ध और प्रामाणिक पाठ के निर्धारण के लिए तुम्हें वे भी पढ़नी पड़ेंगी।

मूलर—आचार्यवर, यह तो ठीक है। पर क्षमा करें गुरुदेव, यह तो बहुत बड़ा काम है। इसके लिए जितना परिश्रम और समय चाहिए उससे कहीं अधिक धन की भी आवश्यकता पड़ेगी उसे छपवाने के लिए।

बर्नूफ—तुम ठीक कह रहे हो, पर मुझे आशा है कि तुम्हारे सभाष्य सम्पूर्ण

विश्वविद्यालय के विख्यात वेद-विद्वान् श्री बर्नूफ के पास जाकर अपने संस्कृत ज्ञान को और बढ़ाना चाहिये। तेरा आशीर्वाद लेने के लिए ही मैं यहां आया हूं। अब तू आज्ञा दे दे तो मैं पेरिस चला जाऊं।

—पुत्र, यदि तेरी यही अभिलाषा है तो मेरा भी निर्णय सुन—

—(**स्वगत**) देखें मां क्या कहती है। (**प्रकट**) बता मां, बता। तेरी आज्ञा मेरे सिर माथे।

माता—तेरा ऐसा उत्कट संस्कृत-प्रेम देखकर मैंने भी फैसला कर लिया है। सुन बेटा, तेरी संस्कृत पढ़ाई में मैं रुकावट नहीं बनूंगी। ले, यह थोड़ा-सा धन। भगवान् करे तेरी इच्छा पूरी हो ॥११॥

(धन की पोटली उसे सौंपना चाहती है)

मूलर—(**खुशी से**) सचमुच मां! रूप की तरह तेरा हृदय भी बहुत सुन्दर और कोमल है। पर यह तो बता कि तुझे यह धन मिला कहां से?

माता—यह छोटी-सी धनराशि तेरे पिताजी छोड़ गये थे। इसे मैंने आज तक बचाये रखा। आज इसके सदुपयोग का मौका आ गया है, यही सोचकर यह धरोहर अब तुझे सौंप रही हूं। ले रख, इससे तेरा कुछ काम चल जाएगा।

मूलर—(**गद्गद् होकर**) अहा, मेरी कृपालु स्नेहमयी माता! (**कहते-कहते उसके पैरों में गिर पड़ता है।**)

माता—उठ बेटे! उठ (**उसे उठाकर गले लगा लेती है**) पुत्र, मेरे जीवन का सहारा तू ही है, इसलिए तुझे परदेस भेजने को मन मानता नहीं, तो भी अब तू पेरिस जाने की तैयारी में जुट जा। और हां, सुन, वहां जाकर आचार्य बर्नूफ की विधिवत् सेवा करना और यह भी कि अपना लक्ष्य सदा ध्यान में रहे। बेटा, तुझे खूब यश मिले और प्रेय (सांसारिक सुख) तथा श्रेय (पारलौकिक कल्याण) भी तुझे सुलभ हों। यही तुझे मेरा आशीर्वाद है ॥१२॥

मूलर—भगवान् करे तेरा यह आशीर्वाद सफल हो, क्योंकि—
तेरा यह आशीर्वाद मेरे जीवन का सदा पाथेय बना रहेगा ॥१३॥
तो मां अब मुझे पेरिस के लिए प्रस्थान करने की अनुमति दे। तेरे चरणों में प्रणाम करता हूं और दीदी तुझे भी।

दोनों—बेटे, तेरा (जीवन का) मार्ग कल्याणकारी हो।

(सबका प्रस्थान)

पहला अङ्क समाप्त

रॉथ अथर्ववेद

काम

त पढ़

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—पेरिस में आचार्य बर्नूफ के घर का आंगन।

(मैक्समूलर और रुडोल्फ रॉथ का प्रवेश)

रॉथ—मूलर, आज तुम बहुत खुश दिखते हो।

मूलर—मित्र, ऋग्वेद पर आचार्य महोदय का प्रवचन सुन-सुनकर मैं इतना आनन्दमग्न हो गया हूं कि अब मुझे पैसे की कमी या भूख-प्यास की कुछ परवाह नहीं रही।

रॉथ—अच्छा, तो यह बात है।

मूलर—ईश, कठ और केन ये तीन उपनिषदें मैंने पढ़ ली थीं। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शिलर के लिए केनोपनिषद् का जर्मन अनुवाद भी किया था। इसलिए कल जब आचार्य ने उपनिषदों के बारे में दो घण्टे तक प्रवचन किया तो उसे सुनकर मैं बहुत खुश हुआ। किन्तु प्रवचन की समाप्ति पर आचार्य के 'किन्तु' कहने पर मेरे मन में आया कि क्रिश्चियन होने के नाते अब कहीं बर्नूफ किसी यूनानी या दूसरे यूरोपियन दार्शनिक के निष्कर्षों को उपनिषदों से भी बढ़कर न बता दें। तब आचार्य कई क्षणों तक ध्यानमग्न रहने के बाद बोले—

'वेद, अहा! वेद सचमुच अनिवर्चनीय हैं'

मैंने तो स्नातक कक्षाओं में ऋग्वेद और अथर्ववेद के कुछ सूक्त पढ़ने के सिवाय आज तक वेद के दर्शन भी कहीं नहीं किए। तो मैं वेद की महिमा क्या समझता। पर, गुरुजी तो ठीक ही कहेंगे।

रॉथ—प्यारे मूलर, वेद तू कहां से देखेगा। ऋग्वेद के कुछ मण्डलों के सिवा वेद कहीं छपे हैं, जो तुझे देखने को मिल जाएंगे। हां, हमारे इस पेरिस विश्व विद्यालय में वेदों की पाण्डुलिपियां अवश्य हैं। और श्री बर्नूफ उनकी प्रतिलिपि तथा सम्पादन के काम में जुटे हुए हैं।

मूलर—हां, भई हमारे वेदज्ञ आचार्य बर्नूफ तो अवेस्ता के भी मर्मज्ञ हैं।

रॉथ—तुम ठीक कह रहे हो। जानते हो बर्नूफ ने दारा प्रथम, द्वितीय आदि

भारतीय साहित्यकार संघ

उद्देश्य और परिचय

केन्द्रीय संस्थापक सदस्य

१ सर्वश्री—गुरुदत्त—डॉ० रामदत्त भारद्वाज
डॉ० जगदीश भारद्वाज—मोहनलाल श्रीवास्तव
डॉ० लोकेशचन्द्र—लक्ष्मीकान्त मुक्त
धनराज ओझा—मुरारी राजीव

२ सर्वश्री—डॉ० हरिशंकर शर्मा—डॉ० बुद्धप्रकाश
डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल—डॉ० दशरथ शर्मा
रघुवीरशरण मित्र—वासुदेव शर्मा
डॉ० कुँवरचन्द्र प्रकाशसिंह—भुवनेश चतुर्वेदी
पं० उदयवीर शास्त्री—अश्विनीकुमार वर्मा
दुर्गादास डोगरा—राजपाल शास्त्री
गजानन्द ऐडवोकेट—पथिक कर्नाटकी

क्षेत्रीय संयोजक एवं संस्थापक सदस्य

सर्वश्री—आचार्य रामनाथ सुमन—कृष्णमित्र
राजकुमार सेनी—सुन्दरदास
डॉ० रमानाथ त्रिपाठी—अरुण प्रकाश अवस्थी
हरिवंश प्रसाद शुक्ल—दीनानाथ मिश्र
सतीशकुमार अरोरा—रामस्वरूप आर्य
जयवंशी झा—देवेन्द्र शुक्ल
दयानन्द डबराल—चुन्नीलाल भारद्वाज
त्रिलोकचन्द गुप्त—

सम्मानित सदस्य

डॉ० हरवंशलाल शर्मा—अलीगढ़ विश्वविद्यालय
डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—पंजाब विश्वविद्यालय

चिति एवम् चेतना

भारतीय साहित्य विश्व का अद्वितीय साहित्य है। ऋग्वेद, उपनिषद् रामायण, महाभारत, भागवत, शाकुन्तल एवं रामचरितमानस का गुण-परिमाण अन्यत्र दुर्लभ है। मनु, तिरुवल्लुवर, भर्तृहरि आदि का ललित नीति-काव्य अपना उपमान स्वयं ही है। किन्तु पाश्चात्य-परतन्त्रता ने हमें स्वकीय गौरव से विरहित कर हीनता-ग्रन्थि का क्रोड़ बना दिया है। हम पश्चिम के अनुकरण को ही प्रगति एवं प्रयोग मान बैठे हैं। जिस प्रकार हमारा सर्वदेशीय जीवन पश्चिम की अनुकृति पर आधारित होता जा रहा है, वैसे ही साहित्य भी। हम सारे विश्व का साहित्य पढ़ें; उसमें जो आदरणीय है, उसका आदर करें, क्योंकि साहित्य को सीमाओं में आबद्ध नहीं किया जा सकता। पश्चिम में बहुत कुछ ऐसा है, जिससे हम, अपने-आपको बदरंग किए बिना भी, लाभ उठा सकते हैं। किन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि साहित्य संस्कृति की रसना है। वह साहित्य निष्प्राण होगा, जिसका मूल स्वकीय संस्कृति में न हो। परकीयता में मूलबद्ध अनुभूति किसी वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास की कल्पना भी नहीं कर सकती। अतएव, हमारे साहित्य का, अन्तर्बाह्य दृष्टियों से भारत-साहित्य होना ही, उसके लिए तथा राष्ट्र के लिए, श्रेयस्कर होगा, इसमें सन्देह नहीं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की महिमा का कारण उनका ठोस भारतीय आधार है। जब स्वर्गीया सरोजिनी नायडू ने अपनी कविता में गिरजाघर के घंटे बजवाए थे, तब उनके पाश्चात्य प्रशंसकों ने उन्हें, भारतीय जीवन को अंकित करने का परामर्श दिया था। महान् साहित्य अपनी संस्कृति पर ही आधृत हो सकता है, महान् साहित्य अपनी भाषा में ही रचा जा सकता है। रवीन्द्रनाथ यदि बंगला में न लिखते, तो नोबेल पुरस्कार के बावजूद भुला दिए गए होते। तोरुदत्त, सरोजिनी नायडू, राजाराव, हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, आर० के० नारायण, कमला मार्कण्डेय आदि यदि अपनी मातृभाषा में लिखते तो अपना और देश का भी अधिक कल्याण करते।

सर्वत्र उदात्तीकरण की प्रवृत्ति अगम्भीर एवं हास्यास्पद है; सर्वत्र हीनभाव की प्रवृत्ति व्यर्थ एवं अपमानजनक है। भारतीय साहित्यकार विश्व को

देख सकता है, उसे वह समझ सकता है। परन्तु भारत को अर्थात् स्वयं अपने को अधिक व्यक्त कर सकता है। अतएव उसे अपने परिवेश का आश्रय स्वीकार करना चाहिए। भारत आधुनिक जीवनवादी नहीं है, क्योंकि वह आधुनिक विचारों में किसी प्रकार की कल्याणकारी विशेषता नहीं देखता। कुछ लोग आधुनिकतावादी साहित्यिक गतिविधियों को भारतीय चिन्तन से श्रेष्ठ मानते हैं। फलत: अधिकांश नवोदित कलाकार आत्मघात की स्थिति में आकर साहित्य को पतन की ओर ले जा रहे हैं।

मानवता की गति सर्वथा नियमित है। अतएव, उसके आकलन में अभिनिवेश न होना चाहिए, पूर्वग्रह न होना चाहिए। मानवता का मूलतत्त्व ही साहित्य की अनुपम निधि है, परन्तु जब मानवता को राजनैतिकवादों के धरातल पर अनुकूल रूप धारण करने के लिए बाध्य किया जाता है तो साहित्य ओज विहीन हो जाता है। इसीसे साहित्य का सृजन शाश्वत मान्यता से रहित होकर वर्ग-विशेष की आकांक्षा का साधन बन जाता है।

सिद्धि के लिए सत्य संकल्प की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि जीवन के लिए प्राण की। यह तभी सम्भव है जब सत्-संस्कार बलवान हों। संस्कार की धारा साहित्य और उसमें प्रतिफलित जीवन में अभिव्यक्त होती रहती है क्योंकि शाश्वत धर्म और साहित्य अन्योन्याश्रित और परस्पर-पूरक हैं। साहित्य के विभिन्न रूप अवश्य होते हैं परन्तु उसके सभी रूपों में आत्मोपलब्धि की आकांक्षा बलवती होती है। भारत ने इस मर्म को आज से लाखों वर्ष पूर्व ही जान लिया था। अतएव भारत में वही श्रेष्ठ साहित्य माना गया है जो लौकिक से पारलौकिक जीवन तक की अभिवृद्धि के लिए पोषक तत्त्व के रूप में वर्णित है। केवल शब्दात्मक कलाबाजी और रूचि विशेष को तोष तथा विश्रान्ति देने के लिए साहित्य के प्रणयन को यहाँ महत्व नहीं दिया गया है। भारत के मध्यकालीन विस्मृतिपूर्ण युग में भी साहित्य और धर्म साथ साथ चले हैं। यह बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि जहाँ हमारे धर्म को विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया, वहाँ साहित्य भी विकृत हुआ है और जहाँ साहित्य में विभ्रम और विकृति आई है वहीं धर्म भी अस्पष्ट रहा है।

भारतीय समाज को पूर्णतया अपने अधीन तथा अपने संस्कारों का समर्थक बनाने के लिए विदेशी शक्तियों ने यहाँ के साहित्य को विकृत और नष्ट करने का पूरा-पूरा प्रयास किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने भारत की प्रत्येक विद्या को या तो लुप्त कर दिया या उसका रूप बिगाड़कर अपने निजी आविष्कार के रूप में भारतीयों के सामने इस विधा से प्रस्तुत किया कि

उनके बौद्धिक महत्व को वे सर्वथा मान लें जिससे कि उन विदेशियों की जातीय गरिमा स्थापित हो जाए। यही कारण है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के इतने दिनों पश्चात् भी हम मानसिक दासता से मुक्त नहीं हो पाये हैं। हमें अपनेपन का बोध नहीं हो रहा है।

इसका परिणाम एक सहस्त्र वर्ष की पराधीनता है और इसीसे देश के जन-जीवन से उच्चाकाँक्षा दूर हो गई और उसमें आत्मविस्मृति ने घर कर लिया है। अतः आज का साहित्य मन्द और शिथिल है। उसमें विचार की मौलिकता कम प्रतिक्रियाएँ अधिक हैं। आत्माभिमानी, समृद्ध, सशक्त और तेजोमय राष्ट्र के साहित्य में जो विशेषताएँ होती हैं वे आज नहीं मिलतीं। भारतीय जीवन के प्रेरणास्रोतों के प्रति उदासीनता, उपेक्षा और हीन भावों का प्रचुर प्रचार हुआ है। भारत का स्वातन्त्र्य-आन्दोलन समाज की जीवन-वृत्ति को उद्वेलित तो कर सका, परन्तु उसमें कर्तृत्व को स्थान नहीं दिला सका। दूसरे अव्यावहारिक दलीय अहिंसावाद ने जीवन की क्षमता को बहुमुखी होने से रोका है। इन दोनों कारणों से साहित्यकार के जीवन पर स्थायी सत्य के वातावरण का प्रभाव कम हुआ। उसमें अपने उन्नत ज्ञान, नैतिकताओं और जीवन-दर्शन के प्रति अनास्था उत्पन्न हो गई और पश्चिम के ज्ञान तथा नैतिक-मान और जीवन-दर्शन के प्रति वह आस्थावान बन गया। इसी आस्था ने हमारे साहित्य और साहित्यकारों को भी प्रभावित किया। यवन राज्य के कठोर शासन में हमारी साँस्कृतिक चेतना क्षीण नहीं हुई थी। उस समय हम यवन-संस्कृति और जीवन-दर्शन से प्रभावित नहीं हुए थे। राजनीतिक दृष्टि से पराजित होने पर भी हमारा साँस्कृतिक पराभव उस समय नहीं हुआ था जबकि अंग्रेजों के शासनकाल में उनकी कूटनीति से हमारी सांस्कृतिक निष्ठा उन्मूलित सी हो गई है। हमारे विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों ने अंग्रेजी भाषा और साहित्य को इतनी प्रमुखता दी कि भारतीय साहित्य उपेक्षित हो गया और हमारा तत्त्वज्ञान अनूदित तत्त्वज्ञान हो गया। अंग्रेजी से अजीविका की सुविधा, प्रतिष्ठित पदों की प्राप्ति और जीवन-सुखों का प्रलोभन सम्बद्ध होने के कारण अंग्रेजी शिक्षा ही हमारा चरम लक्ष्य बन गई। परिणामस्वरूप हमारे भारतीय संस्कार भी मिटते गए और अंग्रेजी साहित्य को ही हम विश्व का उच्चतम साहित्य समझ बैठे।

स्वतन्त्रता के पश्चात् स्वतन्त्र चिंतन के नवोदय की आशा फलवती नहीं हो सकी क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा पद्धति से पाश्चात्य ज्ञान की वरेण्यता के जो बीज अंग्रेजों ने बोये थे, वे अंकुरित और विकसित होकर "हठमूल-वृक्ष"

बन गये हैं। उनके फलस्वरूप जो साहित्य देश में लिखा जा रहा है, उसके अधिकांश ने यहाँ के साहित्य-गौरव को गिरा दिया है।

भारत के स्वस्थ एवम् वीत विक्षेप मानसिक धरातल की उपेक्षा करके भौतिकता से परिवेष्ठित जीवन प्रणाली को अपनी अभिव्यक्ति का केन्द्र मानकर लेखकों का एक विशाल दल इस देश में परकीय मान्यता की सामाजिक एवम् सांस्कृतिक रचना को स्थायी बनाने के लिए अत्यधिक क्रियाशील है। उसके लिए भारत प्राचीन है अतः मृत है। पश्चिम नवीन है, अतः जीवित है। और जीवन का ही अनुकरण आवश्यक बनाने के लिए अनेक विलोभनीय नामों से देश तथा राष्ट्र को उत्पथगामी बनाना ही इन लोगों का कार्य है।

ये लोग प्रान्त, भाषा, जाति, सम्प्रदाय और राजनैतिक दलों के पक्षाभिपक्ष को उभारकर भारतीय जीवन में व्याप्त एकात्मवाद को गहरा आघात पहुँचा रहे हैं। यह सब अज्ञान तथा स्वार्थपरता के कारण ही हो रहा है। साहित्यकार को इससे ऊपर उठकर आत्म-चेतना की शरण लेनी होगी। इसीलिए भारतीय साहित्यकार संघ व्यापक धरातल पर महत्त्वपूर्ण संकल्प के साथ अपने उद्देश्यों को लेकर आगे आया है।

उद्देश्य

ओं स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ।।

१. भारत की अध्यात्म साधनाओं, आस्थाओं तथा आदर्शों पर आधृत साहित्य का भारतीय भाषाओं में निर्माण, प्रकाशन, प्रचार तथा प्रसार ।

२. सत्साहित्य के प्रसंग में भारतीय दृष्टि की स्थापना हेतु संगठन तथा संघर्ष और भारतीय आस्थाओं तथा मर्यादाओं पर आधारित साहित्य-समीक्षा की स्वस्थ परिपाटी की स्थापना ।

३. भारत की प्राचीन विद्याओं की खोज और प्रचार ।

४. पठन-पाठन तथा मनन-चिन्तन हेतु स्वाध्याय मंडलों की स्थापना ।

५. प्राचीन, मध्ययुगीन तथा अर्वाचीन साहित्य के संरक्षण हेतु संग्रहालयों तथा पुस्तकालयों की स्थापना ।

६. साहित्यिक अभिवृद्धि तथा वातावरण के लिए सम्मेलन, संगोष्ठी, गोष्ठी, संवाद, अभिनय आदि ऐसे सभी कार्य करने जिनसे उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति होती हो ।

७. भारतवर्ष की विविध भाषाओं में उपलब्ध एवम् सृष्ट साहित्य में व्यक्त होने वाली साहित्य-परम्परा के ऐक्य का अनुसंधान एवम् प्रचार ।

८. सत्साहित्य की गवेषणा एवम् परस्पर तुलना ।

९. भारतीय लिपियों का ऐतिहासिक एवम् वैज्ञानिक अन्वेषण ।

कार्यक्रम

अतः हमने अपने कार्य को त्रिधारा के रूप में विस्तार देने का निश्चय किया है : १. अनुसंधानात्मक, २. परिष्कारात्मक और ३. प्रचारात्मक ।

१. अनुसंधान के क्षेत्र में भारतीय ज्ञान और परिज्ञान की प्रत्येक शाखा का विस्तृत विवरण, व्याख्या, अन्वेषण और विकासमूलक खोजों का कार्य होगा।

२. परिष्कारात्मक क्षेत्र में मसिजीवी बन्धुओं से सम्पर्क, उनका सम्मेलन, उनकी समस्याओं पर युक्तियुक्त विचार, उनके विकास के लिए योजनाएँ और समयानुकूल तथा उद्देश्यानुकूल अन्य कार्यक्रमादि।

३. प्रचारात्मक की सीमा में साहित्य का प्रसार विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में साहित्य किस मार्ग से प्रवेश करता है तथा उसका रूप किन-किन गतियों के समन्वय से प्रभावपूर्ण तथा प्रभावहीन होता रहता है एवम् उसके रूप-परिवर्तन में कौन से तत्त्व सक्रिय रहते हैं, आदि बातों का अध्ययन अपेक्षित है। इसके अतिरिक्त शाश्वत धर्म को व्यापक तथा सार्वजनीन बनाने के लिए परिस्थिति और काल के अनुसार कार्यक्रमादि का आयोजन।

परिषदों की रचना

उपर्युक्त कार्यक्रम को मुखर बनाने के लिए निम्नलिखित परिषदों की स्थापना की गई है।

- **साहित्य-परिषद् — साहित्य-विभाग**
- **इतिहास-परिषद् — इतिहास-विभाग**
- **दर्शन-परिषद् — दर्शन-विभाग**
- **चाणक्य-परिषद् — राजनीति-विभाग**

ये परिषदें समय-समय पर संगोष्ठी एवम् पत्र-पठन द्वारा अपने विचार से जागरूक भारतीयों को सत्प्रेरित करते हुए ज्ञान-गरिमा की अभिवृद्धि के लिए निरन्तर सक्रिय हैं।

सन् १९६७ के नवम्बर २६ से २८ तक राजधानी में इतिहास-परिषद का विशेष आयोजन हुआ था। इसका विवरण प्रकाशित हो चुका है।

इसमें भारतवर्ष के २२ विश्वविद्यालयों के इतिहास-विभागाध्यक्षों, अनुसंधानकर्ताओं, इतिहास-विदों और राजनीतिक नेताओं ने एकत्र होकर भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की विविध समस्याओं और परिस्थितियों पर विचार किया था।

साहित्य-परिषद् के अन्तर्गत साहित्यिक परिचर्या, संगोष्ठी, पत्र पठ न और सम्मेलन आदि का आयोजन होता है।

चाणक्य-परिषद् सैनिक, राजनैतिक और सामाजिक चेतना के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर विचार विमर्श और संगोष्ठी का आयोजन करती है।

दर्शन-परिषद्—इसमें दार्शनिक परिचर्याएँ, विवाद, पत्र-पठन और संगोष्ठी का आयोजन होता है।

साहित्यकार संघ की स्थानीय शाखाएँ

दिल्ली, कुरुक्षेत्र, भिवानी, श्रीनगर (गढ़वाल), गाजियाबाद, मेरठ, सहारनपुर, मुरादनगर, बिजनौर, कानपुर, एटा, इलाहाबाद, जबलपुर, कलकत्ता, जोधपुर आदि।

पत्रिका

—साहित्यकार संघ की एक मुख पत्रिका शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है। केन्द्रीय कार्य समिति ने इसके लिए श्री वासुदेव शर्मा (मेरठ) को सम्पादक एवं प्रकाशक नियुक्त किया है। पत्रिका त्रैमासिक होगी और इसमें, साहित्य, इतिहास और दर्शन सम्बन्धित सामाग्री के अतिरिक्त विशेष-विचारपूर्ण लेख होंगे।

परिचय

साहित्कार संघ की स्थापना भारत की राजधानी दिल्ली में सन् १९५९ में तुलसी-जयन्ती के दिन हुई थी। इसकी आवश्यकता और भूमिका प्रस्तुत करते हुए श्री मोहनलाल श्रीवास्तव ने कहा था कि 'हम भारतीय मान्यताओं तथा आस्थाओं के लेखकों को इसलिये संकलित करना चाहते हैं, जिससे कि सब मिलकर भारत के भव्य-चिरजीवन की उपलब्धि के लिए विचार कर सकें। संस्कृति एवम् आत्म-विस्तार का श्रेष्ठ साधन साहित्य ही है, इसलिए इसकी उपेक्षा हमारे हित में नहीं होगी।'

हिन्दी के सुविख्यात उपन्यासकार श्री गुरुदत्तजी सन् १९६१ से ही इसके प्रधान हैं। इसकी अनेक शाखायें कार्य कर रही हैं।

सन् १९६१ तथा १९६४ में इसका अधिवेशन क्रमशः दिल्ली और मेरठ में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ है। इसकी गतिविधियों में भाग लेने वाले विद्वानों में सर्वश्री डा० कृष्णदत्त भारद्वाज, अक्षयकुमार जैन, माधवसिंह दीपक, जगदीश सम्राट, आचार्य रघुवीर (स्व०), डा० सत्यदेव चौधरी, डा० देवीशंकर अवस्थी, डा० रामदत्त भारद्वाज, मामा वरेरकर (स्व०), डा० राम मनोहर लोहिया (स्व०), डा० स्वामीशरण भटनागर, डा० डी० डी० मेहता, डा० लोकेश, डा० शारदा रानी, प्रकाशवीर शास्त्री (संसद सदस्य), डा० खुरशीद, डा० हरवंशलाल शर्मा, डा० हरिशंकर शर्मा, नरेन्द्र शर्मा, डा० महावीर, उदयवीर सिंह शास्त्री, मुरारी राजीव, डा० रामप्रकाश अग्रवाल, रघुवीरशरण मित्र, बाँकेबिहारी भटनागर, डा० अर्जुनप्रकाश अग्रवाल, डा० कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, हरिवंश प्रसाद शुक्ल, पथिक कर्नाटकी, कृष्ण मित्र, लक्ष्मी कान्त मुक्त, गजानन्द एडवोकेट, जैनेन्द्रकुमार जैन, डा० हरिवंश राय बच्चन, राजपाल शास्त्री, नगेन्द्र, वासुदेव शर्मा इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

त्रैवार्षिक अधिवेशन दिल्ली

दिल्ली के अधिवेशन (१४ जनवरी सन् १९६१) का उद्घाटन दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के रीडर डा० विजयेन्द्र स्नातक ने किया था।

इसमें राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के अनेक प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

साहित्यकार संघ की अभिवृद्धि के लिए शुभ कामना भेजने वालों में सर्वश्री मान्य—

डॉ० जाकिर हुसैन (उपराष्ट्रपति, भारत), लालबहादुर शास्त्री (प्रधान मन्त्री, भारत,) गुलजारीलाल नन्दा (गृहमन्त्री भारत), यशवन्तराव चव्हाण (संरक्षण मन्त्री, भारत), महावीर त्यागी (पुनर्वास मन्त्री, भारत), भक्तदर्शन (उपशिक्षा मन्त्री, भारत), माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर (सरसंघ) चालक, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ), श्री श्रीप्रकाश (भूतपूर्व राज्यपाल), डा० हरिशंकर शर्मा (उपकुलपति वृन्दावन विश्वविद्यालय), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (विकास जि० सहारनपुर), आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी (सागर विश्वविद्यालय), डा० नगेन्द्र (दिल्ली विश्वविद्यालय), वृन्दावनलाल वर्मा (झांसी), डा० सम्पूर्णानन्द (राज्यपाल, राजस्थान) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

मेरठ अधिवेशन

२५, २६ दिसम्बर सन् १९६४ को मेरठ नगर के तिलक भवन में हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री गुरुदत्त जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। संघ के महामन्त्री श्री मोहनलाल श्रीवास्तव ने संघ के विस्तार और प्रसार पर स्मारिका प्रसारिता की। भाग लेने वाले विद्वान सर्व श्री डा० हरवंशलाल शर्मा, डा० बुद्धप्रकाश, डा० रामदत्त भारद्वाज, डा० शारदा, डा० रमाकान्त, डा० आर०वी० राव, श्री अरुण (स्वागताध्यक्ष अधिवेशन,) रघुवीरशरण मित्र डा० श्रीनिवास, डा० स्वामीशरण भटनागर, गजानन्द एडवोकेट, जगदीश सम्राट के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, दिल्ली, मध्यप्रदेश के लगभग १०० लेखकों एवं पत्रकारों ने भाग लिया।

विचारणीय विषय थे—(१) भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता।
(२) भारतीय इतिहास के परिमार्जन की आवश्यकता।
(३) साहित्यकार का दायित्व।
(४) नवलेखन-विदेशी विचार।

उद्घाटन-भाषण—डा० हरेकृष्ण महताब, संसद-सदस्य (भूतपूर्व राज्यपाल तथा मुख्य मन्त्री उड़ीसा) ने दिया

मुद्रक—राष्ट्र भारती प्रेस, कूचा चेलान, दरियागंज, दिल्ली

भारतीय साहित्यकार संघ द्वारा आयोजित

विगत इतिहास परिषद् :संक्षिप्त विवरण:

मोहन लाल श्रीवास्तव,
महामंत्री, भारतीय साहित्यकार संघ,

भारतीय साहित्यकार संघ द्वारा आयोजित इतिहास परिषद् का शुभारम्भ दिनांक २६ नवम्बर सन् १६६६ को सायंकाल नई दिल्ली स्थित विट्ठलभाई पटेल भवन में भारत के भूतपूर्व सर्वोच्च न्यायाधीश स्व० मेहरचन्द महाजन के उदघाटन भाषण से हुआ। इस महोत्सव में भारतीय इतिहास के अनेक विद्वानों और इतिहास विदों ने भाग लिया। उल्लेखनीय इतिहास वेत्ता सर्व श्री डा० बुद्धप्रकाश, डा० बी०आर० चटर्जी, पं० भागवद्दत्त, डा० हरीराम गुप्त, डा० दशरथ शर्मा, डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, महामहोपाध्याय साहित्यवाचस्पति डा० दत्तोवामन पोद्दार, डा० के०डी० बाजपेयी और डा० रामकुमार दीक्षित आदि के अतिरिक्त दो दर्जन से अधिक इतिहास प्राध्यापकों और अनुसंधान कर्ताओं ने भाग लिया। परिषद् के अध्यक्ष कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में भारतीय विद्यासंस्थान के निदेशक, डीन एवं इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० बुद्ध प्रकाश जी थे। भारतीय साहित्यकार संघ की केन्द्रीय कार्यसमिति के सदस्य होने के नाते कार्यसमिति ने आपको ही परिषद् का निदेशक नियुक्त किया था। परिषद् की बैठकें भारतीय इतिहास के तीन खण्डों पर आधारित थी। क्रमश: प्राचीन भारत, मध्यकालीन भारत और आधुनिक भारत के रूप में भारतीय इतिहास के मंथन और तथ्यसंकलन की विवि दिशाओं और समस्याओं पर विचारार्थ विषय आमंत्रित किए गए थे।

साहित्यकार संघ के अध्यक्ष श्री गुरुदत्त जी ने स्पष्टरूप से कहा था कि इस परिषद् में साहित्यकार संघ अपना किसी प्रकार का मत स्थापित नहीं करना चाहता है, हां वह इस परिषद् में हुए विचार विमर्श से अपना मत बनाने का प्रयत्न करेगा। अत: यह निर्विवाद है कि सा०सं० से किसी आग्रह अथवा पूर्वाग्रह से परिषद् की स्थापना और आयोजन में रुचि लेना उचित नहीं समझा। परन्तु इतिहास परिषद् का पूर्वत: उद्देश्य निश्चित किया जा चुका है और जिसकी घोषणा साहित्यकार संघ की ओर से इस प्रकार की जा चुकी है कि :-

।क। भारतीय इतिहास और संस्कृति का वस्तुपरक भारतीय दृष्टि से अध्ययन।

।ख। भारतीय इतिहास और संस्कृति की दार्शनिक सीमा और अक्षुण्णता का दिग्दर्शन।

।ग। भारतीय राष्ट्रीय जीवन के प्राचीन, अर्वाचीन और भावी ।

क्रम में इतिहास के योगदान का अध्ययन ।

।घ। विश्व के इतिहास तथा संस्कृति और भारतीय इतिहास तथा संस्कृति की अन्त: प्रक्रिया का अध्ययन ।

।ङ। भारतीय जन मानस के विकास की परिचय प्राप्ति आदि ।

इतिहास परिषद् में आरम्भ में ही श्री गुरुदत्त जी ने संकेत दिया था कि इतिहास जैसा विषय राजनीतिक शक्ति की सहायता की अपेक्षा रखता तो है, परन्तु इस पर राजनीति का छा जाना, भयानक और कुपरिणामकारक होगा । अत: निष्पक्ष और प्रमाणसंगत एवं सत्याधारी बातों को बिना किसी हिचक के समान लान में उपस्थित विद्वानों को आगे बढ़ना चाहिये । उद्घाटन भाषण में स्व० महाजन जी ने भी जोर देकर कहा था कि हिन्दू शासन का वह काल जिसने सम्पूर्ण विश्व को प्रथम बार विधान की कल्पना दी, एक अत्यन्त समृद्ध शासनविधा सुफाई, प्रबुद्ध समाज के कार्य प्रकार का ज्ञान कराया तथा अपने में पूर्ण परिवार व्यवस्था का ज्ञान कराया, लेखकों के अज्ञान के कारण अत्यधिक विकृतरूप में लिया पडा है ------- हमारे आकर ग्रन्थों का पश्चिमी विद्वानों द्वारा किया गया अनुवाद भ्रमपूर्ण, अधूरे और यदि मैं कहूं तो कहीं कहीं शरारत भरे पडे हैं ------ इसी बात का सप्रमाण उदघाटन विद्वतवर पं० भगवद्दत्त जी ने अपने अभिमत में किया है । डा० गोपीनाथ शर्मा रीडर इतिहास विभाग राज० व श्री अवनीन्द्रकुमार विधालंकार, डा० अवधबिहारी लाल अवस्थी, डा० ओमप्रकाश डा० हरिवनन्तफडके, श्री कुंवरमाधवसिंह दीपक, श्री कृपालचन्द्र यादव, श्रीकालीचरण डा० सत्यकेतुविधालंकार, डा० रामदत्त भारद्वाज, डा० रामप्रकाशगुप्त, डा० लोकेश प्रो० बलराममधोक, आदि ने अपने विचारों से अवगत कराया । इतिहास परिषद् का विवरण प्रकाशित हो चुका है । इसके प्रकाशन में दिल्ली की संस्था भारतीय संस्कृति परिषद् ने आशातीत योगदान किया है ।

परिषद् के स्वागताध्यक्ष थे दिल्ली के सुप्रसिद्ध एडवोकेट श्री गजानन्द जी, परिषद् के मन्त्री श्री राजपालशास्त्री थे और संयोजन का भार मेरे ऊपर था ।

इतिहास परिषद् में डा० कृष्णदत्त वाजपेयी सागर विश्वविधालय और डा० रामकुमार दीक्षित लखनऊ विश्वविधालय तथा डा० दशरथ शर्मा और बुद्ध प्रकाश जी ने इस बात पर बराबर जोर दिया कि हम अपने इतिहास का वास्तविक अध्ययन करें, मूल साधनों का संकलन और अध्ययन नितान्त आवश्क है । विशेष समस्याओं पर अधिकाधिक व्यक्तियों की गोष्ठियां आयोजित की जाएं और उपलब्ध निष्कर्षों को जनता तक पहुंचाया जाए । राष्ट्र की सीमाओं के विषय में और भारतीय संस्कृति के विषय में जो भ्रम फैलाए जा रहे हैं जैसे कि

...िष्ट हैं, अविकट्य है और इनका राज्यसत्ता पर निर्भर नहीं है। ...राजसत्ता से भी चिरकालीन और बलिष्ट कारणों पर अधिष्ठित हैं।

इस प्रकार आत्मावलोकन और आत्मोपलब्धि के परिवेश में विद्वातवर्ग ने अपने भारत को देखा और देखकर आत्मगौरवान्वित हो फिर से भारत माता की जयजयकार समूचे विश्व में अनन्तकाल तक गूंजती रहे, इस हेतु भावी पीढी को सच्चे इतिहास ज्ञान देने के संकल्प और मातृभाषा में भारतीय संतति को भारतीय इतिहास पढाने के निश्चय को संपादित करती हुई यह परिषद् दिनांक २८ नवम्बर को सायं ६ बजे सम्पन्न घोषित की गई

प्राचीन भारत सत्र के अध्यक्ष, सम्प्रति जोधपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० दशरथ शर्मा ने इतिहास के विविध पक्ष और लक्ष्यों की व्याख्या करते हुए घोषित किया कि इतिहास का स्थापन ऐतिहासिक तत्वों की स्थापना मात्र के लिए नहीं अपितु सांस्कृतिक तथ्यों को श्रोताओं के मन में बैठाने के लिए प्राचीन भारत में किया जाता रहा है ---- भारतीय इतिवृत्त की स्थिति अब भी अत्यन्त अव्यवस्थित है ----कहीं पूर्वाग्रहवश और कहीं अज्ञानवश इनपर एकमत नहीं हो पाता ---अन्त में इन्होंने कहा कि इतिहासकार के लिए अन्धकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमृत्व की ओर बढ़ने से अधिक ईप्सित कोई लक्ष्य नहीं हो सकता ----मध्यकाल सत्र के अध्यक्ष डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने सार रूप में कहा कि

But the most effect of the eramping Mughal rule was that the Hindus could not speak or write the truth; they could mohdëal with the musting on equal terms, and deneloped low, coming, hypocrisy and even deciet to get on the in the world. The demoralization of the Hindu character is the greatest blot on the theeratic Mughal rule in India.

और वरिष्ठ ... डा० ... पोद्दार ने घोषणा की कि मते हो एक ... यह न रही हो, भारत की एकता के

भारतीय साहित्यकार संघ,

केन्द्रीय कार्यालय,

पत्रांक ००व्य,बं० .. ५७

दिनांक १६ जुलाई सन् ६८

भारतीय साहित्यकार संघ बंगाल शाखा के संयोजक तथा अखिल भारतीय ... के उप संपादक ...श्री अरुण प्रकाश अवस्थी का व्यक्तव्य.

व्यक्तव्य.... १,५७६.६८

दिनांक १७ जुलाई सन् ६८ को लोक सभा की उपसमिति में इंडियन पेनलको संशोधित १९६७ के संदर्भ में अश्लील साहित्य के प्रकाशन एवम् लेखन पर रोक लगाए जाने पर विचार हुआ.साक्षी के रुप में भारतीय साहित्यकार संघ बंगाल एकांश के संयोजक के नाते मैं ने भाग लिया.मैंने ऐसे समस्त साहित्य प प्रतिबन्ध लगाए जाने की मांग की कि जिससे हमारा राष्ट्रीय,जातीय,... एवम् व्यक्तिगत चरित्र गिरता हो.विदेशी राष्ट्रों द्वारा हमारे प्रतिकूल प्रचार साहित्य के माध्यम से हो रहा है वह एक सुनियोजित षड्यन्त्र ... अविलम्ब रोक लगाई जानी चाहिए.तथा सरकार का ऐसे समस्त साहित्य ... और साहित्यिक संस्थाओं को सहयोग मिलना चाहिए जिनसे राष्ट्रीय ... और जातीय गरिमायुक्त साहित्य सृजन हो रहा है.अश्लील साहित्य ... कुछ जटिल अवश्य है लेकिन सामाजिक मान्यताओं और मर्यादाओं के मा... सभी जानते हैं कि श्लील और अश्लील में कितना अन्तर है.

भारतीय साहित्यकार संघ और ज्योत्सना बंगाल की दोन... एक संस्थाओं द्वारा किए गए कार्य पर जब मैंने प्रकाश डाला तो कुछ प्रग... कहलाने वाले लोगों को बुरा लगा और उनका रुख सहयोगात्मक नहीं लगा ... कि सरकार अभी तक देश में ऐसे मापदंड का निर्माण नहीं कर पाई है जिससे ... विवेकपूर्ण स्वतंत्र निर्णय ले सके. मुझको आशा है कि सरकार द्वारा संपादि... समिति एकाएक कोई निर्णय तबतक नहीं लेगी जबतक देश के जनमानस का उ... दान नहीं मिल जाएगा.

हस्तम् ..

अरुण प्रकाश अवस्...
प्रा० संयोजक भारतीय सा...
+ १२ संघ बंगाल एकांश

१८ जुलाई १९६८

अरुण प्रकाश अवस्थी प्रादेशिक संयोज...

भारतीय साहित्यकार संघ,बंगाल ...

भारतीय साहित्यकार संघ,

केन्द्रीय कार्यालय,

पत्रांक ००व्य,बं० .. ५७६

दिनांक १६ जुलाई सन् ६८

भारतीय साहित्यकार संघ बंगाल प्रांत के संयोजक तथा ... के उप संपादक ...श्री अरुण प्रकाश अवस्थी का व्यक्तव्य.

व्यक्तव्य.... १,५७६.६८

दिनांक १७ जुलाई सन् ६८ को लोक सभा की उपसमिति में इंडियन पैनलको संशोधित १९६७ के संदर्भ में अश्लील साहित्य के प्रकाशन एवम् लेखन पर रोक लगाए जाने पर विचार हुआ. साक्षी के रुप में भारतीय साहित्यकार संघ बंगाल एकांश के संयोजक के नाते मैं ने भाग लिया. मैंने ऐसे समस्त साहित्य प्रतिबन्ध लगाए जाने की मांग की कि जिससे हमारा राष्ट्रीय, जातीय, एवम् व्यक्तिगत चरित्र गिरता हो. विदेशी राष्ट्रों द्वारा हमारे प्रतिकूल प्रचार साहित्य के माध्यम से हो रहा है वह एक सुनियोजित षड्यन्त्र है अविलम्ब रोक लगाई जानी चाहिए. तथा सरकार का ऐसे समस्त साहित्य और साहित्यिक संस्थाओं को सहयोग मिलना चाहिए जिनसे राष्ट्रीय और जातीय गरिमायुक्त साहित्य सृजन हो रहा है. अश्लील साहित्य कुछ जटिल अवश्य है लेकिन सामाजिक मान्यताओं और मर्यादाओं के मा... सभी जानते हैं कि श्लील और अश्लील में कितना अन्तर है.

भारतीय साहित्यकार संघ और ज्योत्सना बंगाल की दोनों एक संस्थाओं द्वारा किए गए कार्य पर जब मैंने प्रकाश डाला तो कुछ प्रगति कहलाने वाले लोगों को बुरा लगा और उनका रुख सहयोगात्मक नहीं लगा कि सरकार अभी तक देश में ऐसे मापदंड का निर्माण नहीं कर पाई है जिससे विवेकपूर्ण स्वतंत्र निर्णय ले सके. मुझ को आशा है कि सरकार द्वारा संपादित समिति एकाएक कोई निर्णय तबतक नहीं लेगी जबतक देश के जनमानस का ... दान नहीं मिल जाएगा.

इस्तम् ..

अरुण प्रकाश अवस्थी
प्रा० संयोजक भारतीय सा...
... संघ बंगाल एकांश

१० जुलाई १९६८

अरुण प्रकाश अवस्थी प्रादेशिक संयोज...
भारतीय साहित्यकार संघ, बंगाल ...

हरेराम हरेराम रामराम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(नामजप यज्ञ)

* अक्कलकोटनिवासी परमसद्गुरु श्रीगजाननमहाराजके कृपाशीर्वादसेही संकल्पि
नामजपयज्ञ तथा उसकी सांगता प्रत्यर्थ को जानेवाले ३.। करोड मंत्रसंख्य
पूर्ण की ।

* आनंद प्रीत्यर्थ निम्नलिखित स्थानोंपर यज्ञ-याग किये गये :
पूना-- नवचंडीयाग, सोलापुर -- नवचंडी, गणेश तथा रुद्रयाग, कोल्हापु
और गणेशयाग, अक्कलकोट-- गणेशयाग.

* इस याग का प्रसाद आपको प्रसाद रूपमें भेजा है।

* प्रयत्न किया जानेपर आपके विभागमेंभी एकाध 'याग' किया जा सकता है

* उपरनिर्दिष्ट 'कलिकल्मषनाशनषोडशनाम' महामंत्रका जप अब पुरुषवर्गभी
इसप्रकारकी अनुमती 'श्री'जीसे मिली है । जगत् कल्याणार्थ इसमंत्रका ज
व्यक्तिनें करना चाहिये यह श्री जीकी इच्छा है ।

* ज्येष्ठ शु॥ षष्ठीयुक्त सप्तमी शक १८९० दिनांक ३-६-१९६८ के दिवसपर
५० साल पूर्ण होकर उन्होनें ५१ वर्षमें पदार्पण किया है । तन्निमित्त
गुरुभक्तोनें अनेवाले वसंतऋतुमें (मार्च १९६९) सोमयाग महायज्ञ जगत
करनेका निश्चय किया है । इसीलिये श्रीसद्गुरु सेवा समिति की स्थापना

* श्री गुरुसेवा समितीके कार्यवाहने प्रसिध्द किया हुवा प्राथमिक पत्रक आप
है ।

* आपके समान आपके विभागके अन्य श्रध्दावान स्त्री-पुरुषभी यथामती सेवा
सहभागी हो सकते है । इसलिये आप आवश्यक प्रयत्न करे यही इच्छा

नामजपयज्ञ समिति 'सत्संग'
३७६, शुक्रवार पेठ, शिवाजीरोड, पुणे-२.
महाराष्ट्र

--- बा.ग.वड
कार्यवा
दिनांक :

/ --- ०००० ---

कु/ १७-७-६८.

।। श्री कोशाम्बा गुरुभ्यो नमः ।।

श्री मदतमृतवाग्भवाचार्य सांस्कृतिक शिक्षा एवं शोध प्रतिष्ठान

1· नाम- इस प्रतिष्ठान का नाम श्री मदअमृत वाग्भवाचार्य सांस्कृतिक शिक्षा एवं शोध प्रतिष्ठान रहेगा ।

2· कार्यालय- इस प्रतिष्ठान का केन्द्रीय कार्यालय जयपुर रहेगा ।

3· कार्यक्षेत्र - कार्यक्षेत्र की दृष्टि से इस प्रतिष्ठान का क्षेत्र सम्पूर्ण भारत रहेगा ।

4· प्रतिष्ठान के उद्देश्य - प्रतिष्ठान के निम्नलिखित उद्देश्य रहेंगे :-

1- योग, अध्यात्म तंत्र एवं श्री विद्या संबंधी शोध, गवेषणा एवं प्रकाशन :

2- वैदिक वाङ्मय का विधि विद्याओं पर वैज्ञानिक अनुसंधान एवं संरक्षण :

3- प्राचीन पांडुलिपियों का संरक्षण

4- संस्कृत भाषा का प्रचार, प्रसार एवं संरक्षण तथा संस्कृत विद्यार्थियों के छात्र वृत्ति आदि वितरण·

5- प्रतिष्ठान के उद्देश्यों की सम्पूर्त्यर्थ पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन एवं प्रकाशन·

6- योग एवं तंत्र विद्या का व्यावहारिक प्रशिक्षण एवं प्रयोग शाला का निर्माण·

7- समय-समय पर संगोष्ठियों, विशिष्ट आयोजनों एवं अध्ययन शिविरों के द्वारा भारतीय आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप को जन मानस में प्रतिष्ठापित करना

8- विशिष्ट विद्वानों एवं प्रतिभाओं आदि का सम्मान एवं अभिनन्दन

9- उपरोक्त उद्देश्यों की सम्पूर्ति एवं अनुसंधान कार्य में उपयोग हेतु श्री पुस्तकालय की स्थापना एवं श्री भवन का निर्माण·

10-

5· आय के स्त्रोत एवं साधन- (अ) प्रतिष्ठान के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आय के निम्न लिखित स्त्रोत होंगे ।

1- सदस्यता शुल्क, 2-चन्दा, 3-राजकीय सहायता एवं अनुदान, 4-कालांतर में प्रतिष्ठान द्वारा भेंट अथवा अन्य किसी प्रकार की आय·

(ब) प्रतिष्ठान में ली गई किसी प्रकार की भी धनराशि की अधिकृत रसीद दी जायेगी ।

(स) स्थायी सम्पति दान लेने के लिए अध्यक्ष एवं महामंत्री प्रतिष्ठान के अधिकृत प्रतिनिधि होंगे तथा संबंधित अधिकार पत्रों पर उनके हस्ताक्षर प्रतिष्ठान के प्रतिनिधि के रूप में मान्य होंगे । सम्पति पर प्रतिष्ठान को स्वामित्व होगा

6- सदस्यता- प्रतिष्ठान के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहने वाला कम से कम अठारह वर्ष का कोई भी पुरुष एवं महिला प्रतिष्ठान का निर्धारित शु[illegible] एवं सदस्यता पत्र द्वारा बन सकते हैं ।

7- सदस्यता के प्रकार -(1) सहायोगी सदस्य (2) सक्रिय सदस्य (3) आजीव[illegible] (4) मान्य सदस्य (5) संस्थापक सदस्य

- सदस्यता शुल्क- प्रतिष्ठान के विभिन्न सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार से होगी :-

§1§ सहयोगी सदस्य - दस रुपया प्रतिवर्ष,
§2§ सक्रिय सदस्य - दस रूपया प्रतिवर्ष तथा 51/- अथवा अधिक एक मुश्त एक बार
§3§ आजीवन सदस्य- दस रूपया प्रतिवर्ष तथा 501/-अथवा अधिक एक मुश्त में एक बा
§4§ मान्य सदस्य -प्रतिष्ठान के अध्यक्ष महोदय कार्यकारिणी की अनुमति से अधिक से अधिक दो विशिष्ट ? व्यक्तियों कोएक वर्ष के लिये मान्य सदस्य बना सकते हैं ।मान्य सदस्य को सदस्यता शुल्क देना अनिवार्य नहीं होगा ।
§5§ संस्थापक सदस्य- प्रारम्भ में जिन व्यक्तियों ने प्रतिष्ठान के गठन कर उसे मूर्त दिया है तथा निष्ठापूर्वक कार्य किया है वे प्रतिष्ठान के संस्थाप सदस्य कहलायेंगे ।

9- प्रवेश शुल्क- प्रतिष्ठान का सदस्य बनने पर एक रूपया प्रवेश शुल्क के रूप में प्रत्येक सदस्य क प्रथम बार देना अनिवार्य होगा ।

10- सदस्यों की अपात्रता- निम्नलिखित व्यक्ति प्रतिष्ठान के सदस्य नहीं बन सकेंगे - §1§ मांस,मदिरा का सेवन करने वाले,§2§ मानसिक रोगी §3§ आपराधिक अभियोग से दण्डित व्यक्ति §4§ देश,धर्म,संस्कृति और प्रतिष्ठान के उद्देश्यों में आस्था न रखने वाले व्यक्ति ।

11- सदस्यों की नियोग्यतायें-

§1§ निर्धारित शुल्क न देने पर,
§2§ स्वयं त्यागपत्र देने पर,
§3§ प्रतिष्ठान के उद्देश्यों की पूर्ति में बाधक बनने पर,
§4§ कार्यकारिणी द्वारा उपस्थित दो तिहाई बहुमत से अयोग्य करार देने पर,
§5§ प्रतिष्ठान के नियमों की अवहेलना करन पर,

12- सदस्यों के अधिकार-

§1§ सहयोगी सदस्य - प्रतिष्ठान की समस्त गतिविधियों एवं कार्यक्रमों में सहयोगी रूप में सम्मिलित हो सकेंगे । कार्यकारिणी के चुनाव के अवसर मत देने का अधिकार होगा किन्तु किसी पद पर खड़े होने का अधिकार नहीं होगा ।

§2§ सक्रिय सदस्य- प्रतिष्ठान के हित के लिए समयानुसार सक्रिय योगदान देना अनिवार्य होगा । कार्यकारिणी के चुनावों में अपना मत दे सकेंगे तथा किसी भी पद पर खड़े हो सकेंगे ।

§3§ आजीवन सदस्य - कार्यकारिणी के स्थायी सदस्य के रूप में रहेंगे । कार्यकारिणी में उपस्थिति अनिवार्य नहीं होगी । कार्यकारिणी में मतदान का अधिकार नहीं होगा । किन्तु प्रस्तुत विषयों पर अपने सुझावों से प्रतिष्ठान कार्यकारिणी को लाभान्वित करते रहेंगे

§4§ मान्य सदस्य- कार्यकारिणी को अपने सुझावों से लाभान्वित करते रहेंगे किन्तु कार्यकारिणी में मतदान का अधिकार नहीं होगा ।

§5§ संस्थापक सदस्य -§क§ प्रतिष्ठान के संस्थापन में मूलरूप से जिन व्यक्तियों ने प्रयत्न एवं श्रम किया है उन्हें ही प्रतिष्ठान के हित एवं प्रतिष्ठान की भावना हेतु रखा गया है ।

--------3/-

{ख} संस्थापक सदस्य कालांतर में प्रतिष्ठान के निर्वाचित पद पर न रहने पर भी कार्यकारिणी के स्थायी सदस्य बने रहेंगे ।

{ग} संस्थापक सदस्य कार्यकारिणी के किसी भी पद पर चुनाव में खड़े हो सकेंगे ।

{घ} दलगत भावनाओं के कारण प्रतिष्ठान में जब कभी विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो संस्थापक सदस्य प्रतिष्ठान का संचालन अपने हाथ में ले सकते हैं और प्रतिष्ठान को विघटित होने से बचा सकते हैं ।

{न} कार्यकारिणी द्वारा दिये गये निर्णयों में भी यदि प्रतिष्ठान के हित में आव[श्यक] हो तो परिवर्तन करने के संस्थापक सदस्य अधिकारी होंगे ।

{त} प्रतिष्ठान का अहर्निश हितसाधन संस्थापक सदस्यों के लिये अनिवार्य होगा तथा वे किसी प्रकार के शुल्क से प्रतिबंधित नहीं होंगे ।

{थ} चल सम्पति आदि की चाबियां तथा अचल सम्पति-भवनादि वस्तुओं पर नियंत्रण संस्थापक सदस्यों द्वारा संस्थापक सदस्यों में ही चयन किये गये दो सदस्यों के पास डबललोक में रहेंगी । किन्तु आवश्यकता पड़ने पर संस्थापक सदस्य किन्हीं अन्य दो को अपने स्थान पर अन्य सदस्यों की सहमति से एतदर्थ मनोनीत कर सकेंगे ।

निम्नलिखित सदस्य प्रतिष्ठान के संस्थापक सदस्य होंगे -

क्र0 सं0	नाम	व्यवसाय	पता
1-	श्री गोविन्द जी मिश्रा	धर्मकार्य [illegible] सम्पादन	चौबुर्जा, भरतपुर
2-	श्री दुर्गादत्त शर्मा	राज्य सेवा	ए-72, जनता कालोनी, जयपुर
3-	श्री गिर्राजशरणजी गुप्ता	" "	बी-208, जनताकालोनी, जयपुर
4-	श्री सियारामजी गर्ग	" "	बी-314 " " "
5-	श्री अखिलेश कुमार शर्मा	" "	ए-72, " " "
6-	श्री कालीचरण शर्मा	" "	बी-328, " " "
7-	डा0 धर्मेश्वर जी शर्मा	चिकित्सक	चौबुर्जा, भरतपुर
8-	श्री धर्मगोपाल चतुर्वेदी	एडवोकेट	गोपालगढ़, भरतपुर
9-	श्री रमेशचन्द गुप्ता	"	बुधकी हाट, भरतपुर
10-	श्री गिरिराज शर्मा	धार्मिक सेवा एवं अध्ययन	जयपुर
11-	आचार्य दयानन्द सारस्वत	राज्य सेवा	जोधपुर

13- कार्यकारिणी- प्रतिष्ठान की कार्यकारिणी का गठन निम्न प्रकार होगा :-

1- अध्यक्ष-एक
2- उपाध्यक्ष - दो
3- महामंत्री- एक
4- संयुक्त मंत्री -दो
5- अर्थ मंत्री {कोषाध्यक्ष}- एक
6- सदस्य - आठ

14- कार्यकाल {अ} निर्वाचित होने के पश्चात् प्रतिष्ठान की कार्यकारिणी का सामान्यतः दो वर्ष का होगा । विशेष परिस्थितियों में कार्यकारिणी समय की उक्त अवधि को प्रस्ताव द्वारा छः मास के लिए और बढ़ा सकती है ।

(ब) यदि कार्यकारिणी ढाई वर्ष तक कोई चुनाव नहीं कराये तो संस्थापक सदस्य प्रतिष्ठान का संचालन आवश्यक कार्यवाही हेतु संभाल लेंगे ।

15- आर्थिक वर्ष- (अ) प्रतिष्ठान का वर्ष विक्रम संवत् से प्रारम्भ माना जायेगा ।
(ब) प्रतिवर्ष की समाप्ति के तीन माह के अंतर्गत वार्षिक आय व्यय एवं प्रतिष्ठान की गतिविधियों के संबंध में एक प्रतिवेदन तैयार किया जाकर सभी सदस्यों को सूचनार्थ प्रतिवर्ष भेजा जायेगा ।

16- चुनाव (अ) प्रतिष्ठान के पदाधिकारियों का चुनाव गुप्त या पद्धति द्वारा बहुमत से होगा ।
(ब) साधारण सभा द्वारा कार्यकारिणी के लिये प्रतिनिधियों का चुनाव किया जायेगा ।सभी प्रतिनिधि मिल कर प्रतिष्ठान की कार्यकारिणी का गठन करेंगे ।
(स) प्रतिष्ठान के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कार्यकारिणी अपने अन्तर्गत अन्य समितियों का गठन एवं उनके संचालन हेतु नियमों का निर्माण कर सकेंगे ।

17- अध्यक्ष के दायित्व एवं कर्तव्य -
(1) कार्यकारिणी एवं साधारण सभी की बैठकों की अध्यक्षता करना
(2) कार्यवाही को नियमित एवं अनुशासित ढंग से करना
(3) संस्थान की बैठक की कार्यवाही, प्रस्तावों एवं बिलों पर हस्ताक्षर करना ।
(4) प्रतिष्ठान की प्रतिष्ठा एवं विकास के लिये सतत् प्रयत्नशील रहना ।

18- उपाध्यक्ष के दायित्व एवं कर्तव्य-अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अध्यक्ष के समस्त दायित्वों का निर्वहन करना

19- महामंत्री के दायित्व एवं कर्तव्य -
(1) प्रतिष्ठान संबंधी समस्त अभिलेखों एवं पत्रादि की सुरक्षा,
(2) अध्यक्ष के परामर्श से विषय निर्धारण करना, कार्यकारिणी की बैठक बुलाना और उनकी व्यवस्था करना ।
(3) बैठकों की कार्यवाही को लिपिबद्ध करना एवं अध्यक्ष के हस्ताक्षर कराना ।
(4) प्रतिष्ठान की समस्त सम्पत्ति पर निरीक्षणात्मक दृष्टि रखना ।
(5) आय व्यय की समय-समय पर देखभाल करना तथा संबंधित बिलों को सत्यापित करना ।
(6) रेकार्ड को व्यवस्थित रखना ।
(7) प्रतिष्ठान का वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करना तथा प्रस्तुत करना ।

20- संयुक्त मंत्री के दायित्व एवं कर्तव्य-
(1) प्रतिष्ठान संबंधी समस्त कार्यों में महामंत्री को अपेक्षित सहयोग देना ।
(2) बैठकों की ~~आद~~ व्यवस्था एवं कार्यवाही के लेखन में महामंत्री का सहयोग देना
(3) महामंत्री की अनुपस्थिति में उनके समस्त दायित्वों का निर्वहन करना ।
(4) महामंत्री अध्यक्ष की अनुमति से मंत्रियों के मध्य सौंपे गये कार्यों एवं दायित्वों का निर्वहन करना ।

21- अर्थ मंत्री एवं कोषाध्यक्ष के दायित्व एवं कर्तव्य-
(1) प्रतिष्ठान के आय व्यय का सम्पूर्ण लेखा जोखा तैयार करना ।
(2) वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करने में महामंत्री को सहयोग करना ।
(3) प्रतिष्ठान की धनराशि को कार्यकारिणी द्वारा स्वीकृत बैंक में जम

(4) अध्यक्ष एवं महामंत्री द्वारा स्वीकृत बिलों का भुगतान करना ।

(5) प्रतिष्ठान की प्रत्येक चल अचल सम्पत्ति का पूर्ण ब्यौरा रखना ।

22- व्यय के अधिकार-

(1) कार्यकारिणी की पूर्व स्वीकृति के बिना भी अध्यक्ष सौ रुपया तक व्यय करने की स्वीकृति दे सकता है ।

(2) प्रतिष्ठान को आवश्यकता के लिए महामंत्री अध्यक्ष की अनुपस्थिति के बिना भी पचास रुपया व्यय कर सकता है ।

(3) म... ...चास रुपया तक की राशि अपने पास रख सकता है इससे अधिक होने पर कोषाध्यक्ष ...रा बैंक में जमा करानी होगी ।

(4) सौ रुपया से अधिक की राशि व्यय करने के लिए अध्यक्ष को कार्यकारिणी की स्वीकृति आवश्यक होगी ।

(5) अध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष अथवा महामंत्री एवं कोषाध्यक्ष के संयुक्त हस्ताक्षरों द्वारा ही धनराशि बैंक से निकाली जा सकेगी ।

(6) स्थायी निर्माण एवं व्यवस्था संबंधी कार्यों के लिए कार्यकारिणी की सम्मति लेना आवश्यक होगा ।

23- (7) आय-व्यय के निरीक्षण के अधिकार- प्रतिष्ठान को कोई भी सदस्य यदि प्रतिष्ठान के आय व्यय का निरीक्षण करना चाहे तो उसे कम से कम पन्द्रह दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक होगा ।

24- विधान संशोधन एवं परिवर्तन- (1) प्रतिष्ठान के विधान में कभी भी अनिवार्यता उपस्थित होने पर कार्यकारिणी बहुमत से संशोधन एवं परिवर्तन के अंश पर आधे से अधिक सदस्यों का सहमत होना आवश्यक होगा ।

(2) परिवर्तन प्रावधान राजस्थान संस्थान रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1958 की धारा 12
25- के आधार पर होना जरूरी होगा ।

25- रजिस्ट्रार संस्थाएं, राजस्थान को संस्था के निरीक्षण का पूर्ण अधिकार है व उनके द्वारा दिये गये सुझावों की पूर्ति की जावेगी ।

26- विघटन संबंधी प्रावधान राजस्थान संस्था रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1958 की धारा 13 व 14 के आधार पर होना वांछित है ।

27- कार्यकारिणी की बैठकें - (क) वर्ष के अन्तराल में कार्यकारिणी की कम से कम दो बैठकें होना आवश्यक है । बैठकों के बीच का अन्तर छः माह से अधिक नहीं होगा ।

(ख) कार्यकारिणी के आधे से अधिक सदस्यों की मांग पर कार्यकारिणी की बैठक कभी भी बुलाई जा सकती है ।

(ग) कार्यकारिणी की बैठ की सूचना यदि अत्यंत आवश्यक न हो तो कम से कम दस दिन पूर्व सदस्यों को देनी होगी ।

(घ) कार्यकारिणी की गणपूरक संख्या एक तिहाई मान्य होगी ।

(च) आवश्यकतानुसार कार्यकारिणी के सदस्यों से पत्र व्यवहार द्वारा भी सुझाव, सम्मति एवं मत लिया जा सकेगा ।

28- संस्थान का समस्त कार्य हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि में सम्पन्न होगा ।

29- हम निम्न हस्ताक्षर कर्ता यह प्रमाणित करते हैं कि उपरोक्त संस्था पूर्ण नाम के विधान की सही वह सच्ची प्रतिलिपि है ।

मंत्री　　　　　उपाध्यक्ष　　　　　अध्यक्ष

ॐ

श्री बाबासाहेब आपटे स्मारक समिति, नागपुर



स्वर्गीय श्री बाबासाहेब आपटे

पत्ता : श्री. बाबासाहेब आपटे स्मारक समिति, ८० अ, हनुमाननगर,
नागपुर ४४०००९

स्व. उमाकांत केशव उपाख्य बाबासाहेब आपटे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रथम प्रचारक तथा अखिल भारतीय प्रचारप्रमुख थे। उनका संघ-निर्माता स्व. डॉ. हेडगेवारजी से संघ-स्थापना-काल से ही सम्पर्क आया था। तथा उनकी प्रेरणा से ही उन्होंने अपना सारा जीवन संघ-कार्यार्थ समर्पित कर दिया था। वे राष्ट्र-कार्य के साथ इतने एकरूप हो गये थे कि उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन की चर्चा अपने प्रियतम सहयोगियों के साथ भी कदापि नहीं की जिससे उनका समग्र जीवनचरित्र वर्णन करना असंभव है। केवल राष्ट्र—समर्पित जीवन की साकार मूर्ति के रूप में ही हम उनका स्मरण कर सकते हैं।

उनका जीवन अखण्ड कर्मशीलता तथा ज्ञान की साधना का उदाहरण था जिसकी तुलना भारतीय ऋषि-मुनियों की परम्पराके साथ हो सकती है। उनकी आराध्य देवता राष्ट्र थी जिसकी उन्होंने काया, वाचा, मनसा आजीवन सेवा की तथा लक्षावधि स्वयंसेवकों को अपने राष्ट्र-समर्पित जीवन के आदर्श से प्रेरणा दी। एक परिव्राजक के समान वे समग्र भारत का प्रतिवर्ष प्रवास किया करते थे तथा उन्होंने अपनी अमृतमय वाणी से लक्षावधि लोगों के हृदयों में राष्ट्रभक्ति की भावना जागृत की।

वे उत्तम वक्ता थे। हिन्दी, मराठी, बंगाली तथा अंग्रेजी भाषाओं में अपने भावों को व्यक्त करने की उनमें अद्‌भूत क्षमता थी। संस्कृत भाषा के प्रति उनकी, प्रगाढ श्रद्धा थी। उनकी प्रेरणा से ही जयपुर तथा नागपुर से क्रमशः भारती मासिक पत्रिका तथा 'भवितव्यम्' नामक साप्ताहिकका प्रकाशन हुआ था तथा दोनों पत्रिकाओं का प्रकाशन आज भी नियमित रूप से हो रहा है। उन्होंने संस्कृत का अध्ययन अपनी प्रौढावस्था में प्रारंभ किया परन्तु अपने अध्यवसाय तथा अध्ययनशीलता के बल पर उस भाषा पर प्रभुत्व प्राप्त किया तथा पश्चात् उस भाषा के अध्ययन के लिए दूसरों को भी अनुप्राणित किया।

वे सिद्ध-हस्त लेखक थे। राष्ट्रीयता का पोषण करनेवाले विविध विषयों-सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक-पर उन्होंने हिंदी-मराठी में अनेक लेख लिखे हैं। उनका 'हमारी राष्ट्रजीवन की परम्परा' ग्रंथ उनकी अनुसन्धान-वृत्ति का परिचायक है, जिसमें उन्होंने दशावतारों की कथा के माध्यम से राष्ट्रजीवन की अखण्ड परम्परा का एक सुसूत्र ऐतिहासिक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था। उनकी यह हार्दिक इच्छा रही कि विद्वान् व्यक्ति अपने देश का ऐसा समग्र इतिहास लिखने का प्रयास करे जिसमें इस राष्ट्र कों अनादिकाल से चलते पुरुष आ रहे पौरुष-संपन्न जीवन का परिचय प्राप्त हो सके।

स्व. बाबासाहेब ने अपना सर्वस्व राष्ट्रदेवता के चरणों में समर्पित कर दिया था अतः उनके उस उदात्ततम जीवन से हम भी कुछ प्रेरणा प्राप्त करने का हृदय में संकल्प करें।

स्मारकसमितिके हेतु एवं उद्देश्य

स्वर्गीय श्री बाबासाहेब आपटे की पुण्य-पावन स्मृति को अजरामर करने के हेतु से "श्री बाबासाहेब आपटे स्मारक समिति की" स्थापना नागपुर में ८ अगस्त

१९७३ को की गई है। समिति का उद्देश्य सम्पूर्ण भारत में साहित्यिक, शास्त्री (वैज्ञानिक) सांस्कृतिक और धार्मिक कार्यों के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण-कार्यों का संचालन एवं विकास करना है। इस दिशा में अग्रसर होने के लिए पुस्तकालय, विद्यालय, महाविद्यालय, औषधालय तथा अन्य सहायता-केन्द्रों की स्थापना एवं आयोजना करके राष्ट्रीय परम्परानुसार एवं सम्पूर्ण मानव-जाति के कल्याणार्थ नैतिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक शिक्षा का प्रसार करना; श्री बाबासाहेब आपटे द्वारा किये गये पवित्र कार्यों के समान कार्य करनेवाले सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये उनकी वृद्धावस्था अथवा अस्वस्थ दशा में उनके द्वारा सम्पन्न निःस्वार्थ एवं निष्ठामय राष्ट्रसेवा के उपलक्ष में उनके लिये नागपुर में निवास तथा आश्रय का प्रबंध करना, एवं भिन्न-भिन्न समाज, मंडल, सभाओं और परिषदों के प्रत्येक व्यक्ति और सभासदों में राष्ट्रीयता की भावना निर्माण करना, एतदर्थ समय समय पर आवश्यकतानुसार सभा परिषद और सम्मेलन आदि आयोजित करके उनमें राष्ट्र-निर्माण-कार्य हेतु आपसी सहयोग और अनुशासन निर्माण करना है।

उपरोक्त कार्यों की पूर्ति के लिये बहुत बडे प्रमाण में धनसंग्रह करने की आवश्यकता है। उसी तरह इन कार्यों को सफलरूपसे सम्पन्न करने के लिये निष्ठावान् कार्याकर्ताओं को भी अपने व्यस्तजीवन में से नियमित ढंग से समय देने की आवश्यकता है। अतएव. राष्ट्राभिमान से प्रेरित प्रत्येक व्यक्ति, सभा, मंडल एवं संस्था से नम्र निवेदन है कि वे इस महान् कार्य के लिये तन मन धन पूर्वक सहकार्य और सहयोग प्रदान करें; तभी हम सच्चे अर्थमें स्वर्गीय श्री बाबासाहेब आपटे द्वारा किये गये महान् राष्ट्रीय कार्यको पूर्ण करने में सफल हो सकेंगे।

स्वर्गीय श्री बाबासाहेब आपटे अपने इतिहासके केवल अभिमानीही नहीं प्रगाढ अभ्यासक भी थे। अपने राष्ट्रके उज्ज्वलतर भविष्य निर्माणमें हमारे इतिहासका अभ्यास उपयोगी हो सकता है, ऐसी उनकी मान्यता थी। परन्तु इस विषयमें एक कमी उन्हें हमेशा खटकती थी वह थी हमारे संपूर्ण इतिहासका एकसाथ चित्र उपस्थित न होना। इस कमी को दूर करनेके लिये उन्होंने अनेकोंको प्रेरित करनेका प्रयास किया। किन्तु दुर्भाग्यसे उनके होते हुए यह कार्य न हो सका। अतः उनकी पावन स्मृतिमें निर्मित समितिकी ओरसे यह प्रयास हो यह उचित मानकर यह इतिहास संकलनकी योजना बनायी जा रही है।

इस कार्यमें रुची रखनेवाले कार्यकर्ताओंके सहयोगसे इस कार्यके लिये देशभरमें हजारों केन्द्र स्थापन कर उन केन्द्रोंके कार्यका सुयोग्य संचालन तथा नियंत्रण जिलास्तरपर कर संपूर्ण देशके सर्वांगीण इतिहासका संकलन हो सकेगा। देशके ख्यातनाम इतिहासकोंका सहयोग, मार्गदर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करना इसका भी बहुत महत्त्व है।

इस कार्य के लिये उपयोगी हो सकनेवाले सभी साधनोंका यथोचित ध्यान रखना होगा। कथा, पुराण, गीत, महान् पुरुषोंके संस्मरण, भूर्जपत्र, ताम्रपत्र, शिलालेख, विशेष घटनाएँ तथा घरानोंके इतिहास, डिस्ट्रिक्ट गॅझेटियर्स, अन्य

ऐतिहासिक पुस्तकें, विदेशी प्रवासियोंने लिखे पत्र तथा वृत्त आदि साधनोंका बहुत उपयोग हो सकता है। ऐतिहासिक घटनाओंके स्थान, मठ, मंदिर, राजघरानोंके प्रमुख स्थान, सन्त लोगोंके स्थान, आश्रम, धाम, नये पुराने ग्रंथ संग्रहालय आदि स्थानोंसे उपयुक्त सामग्री एकत्रित की जा सकती है।

यह ग्रंथ सच्चे अर्थमें सर्वांगपरिपूर्ण हो इसलिये यह संकलन केवल राजनैतिक न होकर समाजजीवनके सभी पहलुओंको स्पर्श करनेवाला हो यह आवश्यक है। अतः वीर पुरुषों और राजाओंके चरित्रके साथही हमारे देशमें निर्माण हुए महान् चिंतक, श्रेष्ठ संशोधक, अतुलनीय साहित्यकार, उच्च कोटीके शास्त्रकार तथा कलाकार, दुनियाके अन्यान्य देशोंमें जाकर वहाँके मानवोंकी सेवा कर उन्हें श्रेष्ठ संस्कृतिकी शिक्षा देने वाले सन्त, महात्मा, भक्त, मानवके ही क्या भूतमात्रके दुःखसे पीडित होकर उनके हितार्थ कार्यदक्ष और परिश्रमी किन्तु संन्यस्त जीवन बितानेवाले ऋषि और तपस्वी जनोंके जीवनका भी वृत्त संकलित करना होगा। हमारे देशके इस सर्वांगीण निर्माण और विकासमें इस देशकी माताओंने किया हुआ श्रेष्ठ कार्यभी हम भूल नहीं सकते।

कलियुगसे लेकर आजतकके ५००० से अधिक वर्षोंके काल को ६०–६० वर्षोंके कालखण्डमें विभाजित कर उनके अनुसार संपूर्ण देशका इतिहास लिखनेका और उसीके साथ साथ उन समयोंके हमारे देशके मानचित्र बनानेका प्रयास हमें करना है।

अतः अपने अपने केन्द्रमें हुई घटनाओंकी कालानुक्रमसे संदर्भसहित सूची बनाना और बादमें एकेक घटनाका स्वतंत्र कागजपर वृत्त लिखना ऐसा इस योजनाका स्वरूप होगा। इस प्रकार अन्यान्य केन्द्रोंमें बनी सूचिया और लिखे गये वृत्त एकत्रित करनेसे हमारे संपूर्ण देशका सर्वांगपरिपूर्ण इतिहास संकलित हो सकेगा। इस कार्यको सफल बनानेके लिये परिश्रम, लगन आदि बातोंके साथ प्रचुर मात्रामें धनकी भी आवश्यकता होगी। इन सभी बातोंमें सहकार्यके लिये समितिकी ओरसे हम विनम्र प्रार्थना करते हैं। समितिके प्रधान कार्यालयसे संपर्क करनेपर इस संबध में अधिक जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

भवदीय

डॉ. ब. ग. पांडे, अध्यक्ष
प्रभाकर फैजपूरकर, कार्यवाह

कृ. नि. मोहरील, उपाध्यक्ष
तुलसीराम सुरजन, कोषाध्यक्ष

मोरोपंत पिंगळे
गो. तु. जोशी
भा. शं. गोखले

वि. पु. बुटी
वा. ग. व्यास
श्री. वा. रा. शेंडे

शे. मा. निघोट

सदस्य, श्री बाबासाहेब आपटे स्मारक समिति

मुद्रक :
गो.. दा. बेळगी,
'पेपको' प्रेस,
३७६ शुक्रवार पेठ, पुणें २.

प्रकाशक :
ज. आ. मोंढकर,
नं. ४ भटवाडी
गिरगांव, बम्बई नं. ४.

प्रथम संस्करण – प्रति २५००, आषाढ शु॥ १५ शके १८८१
द्वितीय संस्करण – प्रति ५०००, आषाढ शु॥ १५ शके १८८२

मिलनेका पत्ता :—
गुरु मन्दिर,
श्री बाळप्पा मठ,
अक्कलकोट (जि. सोलापूर)



धर्म चर

॥ आरती सद्गुरु की ॥

॥ आरती सद्गुरु की ॥

(" जय जय दत्तराज योगी " — की तर्ज पर गावें)



आरति श्री गुरु की, गाउं मैं, आरति सद्गुरु की ।।धृ.।।

सत्य धर्म उपदेश कियो तुम शिष्यों को सुखकारी ।
यही एक है धर्म सनातन, ऐसी शिक्षा तुम्हरी ॥
गुरु ऐसी शिक्षा तुम्हरी ।
गाउं मैं आरति सद्गुरु की ॥१॥

यज्ञ दान तप कर्म और स्वाध्याय ही सद्धर्म ।
वेदों का बस सार यही है, यही विश्वभर धर्म ।
गुरु यही विश्व भर धर्म ।
गाउं मैं आरति सद्गुरु की ॥२॥

सीधी सच्ची राह यही, दुःखों को हरने वाली ।
सब दुःखों को हरने वाली ॥
कल्याण मार्ग पर जगत् चले, है यही कामना तुम्हरी ।
गुरु यही कामना तुम्हरी ॥
गाउं मैं आरति सद्गुरु की ॥३॥

धर्म आचरण पडे कठिन तो, जो तुमसे सीखे ।
नित्य तपस्वी जीवन का आदर्श उसको दीखे ॥
आदर्श तुममें दीखे ।
गाउं मैं आरति सद्गुरु की ॥४॥

क्या कितनी गाऊं महिमा मैं, अज्ञ दास हूँ तुम्हरा ।
धर्म प्रचारक जीवन बीते, कृपा चाहता बंदा ॥
गुरु कृपा मांगता बंदा ।
गाउं मैं आरति सद्गुरु की ॥५॥

रचयिता सेवक —
माधव गोविंद पोतदार
भोपाल (म. प्र.)



अनन्त श्रीविभूषित पूज्य श्री जी
महाराज

C/o श्री पं. दुर्गादत्त जी शर्मा
A - 72 अमृत पथ
जनता कालोनी
जयपुर
302004

परशुराम अवताराचें सर्वांगीण वैशिष्ट्य

आज अक्षयतृतीया. याच तिथीला परशुराम तृतीया असेंही म्हणतात. महाविष्णूंनीं अवतार घेण्यासाठीं आजचा दिवस निवडला आणि भृगुकुलांत जमदग्नी रेणुकेच्या अुदरीं रामांचा जन्म झाला. हे जामदग्न्यराम, महाविष्णूच्या दशावतारापैकीं अेकमेव चिरंजीव अवतार तर आहेतच, त्या शिवाय त्यांची गणना अश्वत्थामा, बलि, व्यास आदि सप्तचिरंजीवांत आहे.

यदायदाहि धर्मस्य ---- या सुपरिचित गीता वचनाप्रमाणें अवताराचें प्रयोजन पूर्ण होतांच, धारण केलेला भौतिक देह विसर्जित करून, अवतार धारण करणारे तेज महाविष्णूत विलीन होते. अवतारकार्य संपतांच दाशरथीरामांनीं आपला पार्थिव देह शरयू नदींत विसर्जित केला. व्याधाच्या बाणाचें निमित्त करून भगवान श्रीकृष्णांनीं आपला अवतार संपविला. अशा प्रकारचें संदर्भ, परशुरामांच्या बद्दल मिळत नाहींत, म्हणून त्यांना चिरंजीव म्हणण्याची प्रथा पडली, असें कांहीं विद्वान प्रतिपादन करतात. पण युगांयुगांतून व नंतरच्यां अवताराच्यावेळीं परशुरामांचें प्राकटय कसें झालें ? याचें अुत्तर त्यांना देतां येत नाहीं. खरें म्हटलें तर अशा विद्वानांनीं परशुरामांनाच चिरंजीव कां म्हटलें असावें ? असा प्रश्न स्वतःला विचारून त्याचें अुत्तर शोधावयास हवें.

परशुरामांचें जन्मरहस्य मोठें चिंतनीय आहे. ऋचिक महामुनींनीं, आपली पत्नी आणि सासू यांची पुत्रकामना पूर्ण व्हावी म्हणून त्या अुभयतांना अनुरुप, असें दोन निरनिराळे चरु तयार करून दिलें. परंतु मुनिवर्यांनीं सासूपेक्षां पत्नीसाठीं अधिक चांगला चरु तयार केला असेल, या भावनेनें चरुंचीं अदलाबदल करून, कन्येचा चरु आईनें स्वतः भक्षण केला व आपला कन्येस दिला. त्यामुळें ऋषीकुलास योग्य अशा चरुंच्या भक्षणानें विश्वामित्रांचा जन्म झाला, तर राज-घराण्याला युक्त अशा चरुमुळें परशुरामांचें ठायीं ब्राह्म आणि क्षात्र अशा तेजांचें मीलन झालें. माता पित्यांनीं आपल्या या लाडक्या मुलाचें "राम" असें नांव ठेविलें. रामानें स्वतःच्या प्रखर तपस्येनें शिवांना प्रसन्न करून परशु रुपानें चिन्मयशक्तीची प्राप्ति करून घेतली. ती परशुरुपी शक्ति नित्य जवळ बाळगण्यानें "राम" हे पुढें परशुराम झाले.

प्रखरबुद्धिमत्तेच्या, या लाडक्या बालकाचें अध्ययन वडिलांच्या आश्रमांत चालू असतांना अेक कसोटीचा क्षण निर्माण झाला. क्रोधानें लाल झालेल्या जमदग्नींनीं मातृहत्येचा आदेश आपल्या मुलांना दिला. पण मातेवर हात अुगारण्याचें कृत्य चौघांहि भावांनीं मानलें नाहीं. क्षणाचाही विलंब न करतां परशुरामांनीं पित्याच्या आज्ञेचें पालन केलें. आज्ञा मानल्यामुळें प्रसन्न होअून

पुढें चालू...२.

"वर माग" म्हणतांच "भावांसहित मातेचें संजीवन व्हावें व घडलेल्या प्रसंगाची तिला विस्मृती व्हावी". असा वर परशुरामांनीं मागीतला. मातेचें संजीवन झाले तरी मातृहत्येचें पातक शिल्लक होतेंच. मातृवधाची आज्ञा करणाऱ्या जमदग्नीनींच परशुरामांना पापक्षालनार्थ तपस्येसाठीं कैलासावर शिवांचे जवळ पाठविले, आणि तपस्येच्या निमित्तानें परशुरामांच्या चिरंजीव अवतारांतील अेका विशिष्ट अंगाला सुरुवात झाली.

त्या अवधींत हैहय कुळांतील सम्राट, कार्तवीर्यार्जुन, जमदग्नींच्या आश्रमांत आले. आश्रमांतील कामधेनु पाहून तिचेबद्दल त्यांना अभिलाषा निर्माण झाली. त्यांनीं कामधेनूला बळजबरीनें नेण्याचा प्रयत्न केला. याच प्रकरणांतून कार्तवीर्याचा परशुरामांकडून वध झाला आणि शेवटीं २१ वेळां पृथ्वी, निःक्षत्रिय करण्याची प्रतिज्ञा त्यांना करावी लागली. क्षत्रिय संग्रामांत प्राप्त झालेल्या साऱ्या पृथ्वीचें अैश्वर्य कश्यपांना दान केल्यानें व दान केलेल्या वास्तूचा स्वतः अुपभोग घ्यावयाचा नसतो म्हणून सागराकडून नवभूप्रदेश मिळवून तेथें ते वास्तव्या-साठीं गेले. नवभूप्रदेशाची निर्मिति हें परशुराम अवताराचें अेक वैशिष्टय म्हणून दाखवितां येईल. या नंतर अधून मधून त्यांचें प्राकटय होत असले तरी येथेंच अवतार निवृत्ति झाली असा दृष्टिकोन मांडण्यांत येतो. पण माझ्यामतें, अुन्मत्त राजांच्या निःपाताच्या निमित्तानें, परशुरामांना ब्राह्म आणि क्षात्र वृत्तींत समतोल निर्माण करावयाचा होता. त्यांच्या क्षत्रिय संहाराबद्दल गैरसमज दिसतात. पण अन्यायी वृत्तीचें मर्दन आणि वैदिक सनातन धर्माचें संगोपन हाच त्यामागील हेतु स्पष्ट आहे. ते अेक तात्कालिक कार्य होतें. तसें पाहिलें तर त्यांच्या चिरंजीव कार्याला सुरवात ते महेन्द्रगिरीवर तपस्येसाठीं गेल्यावरच झालेली आहे. कारण पुढें दाशरथी रामांची भेट घेवून स्वतःतील क्षात्रतेज परशुराम राघव रामाच्या ठिकाणीं निष्क्रांत करतात. या भेटींत दाशरथी रामांनीं परशुरामांचा पराभव केला अशासारखें गैरसमज पसरविणारे अुल्लेख मिळत असले तरी अधिकारी मंडळीनीं त्याचे विवेचन मोठें मार्मिक केलें आहे.

मी अेक राम दाशरथी । हें नाठवें श्रीरामाप्रती ।
मी अेक भार्गव भृगुपती । नाठवें चित्तीं परशुरामा ।
अैसें पडिलें अालिंगन । निघोर कोंदले चैतन्यघन ।
खुंटला बोल तुटले मौन । जालें परिपूर्ण पूर्णत्वें ।

दोघा रामांच्या भेटीचें रहस्य यांत आहे. पूर्णत्वानेंच परिपूर्णत्व गांठल्यावर जयापजय राहिलाच कोठें ?

पुढें चालू...३.

जरासंधाच्या त्रासामुळें दक्षिणेकडे आलेल्या बलरामकृष्णांना भेटून परशुरामांनीं त्यांना मंत्रदीक्षा दिली आहे. आणि दुर्गयुद्धपद्धति समजावून सांगीतली आहे.

कल्की अवतारांत ते कल्कींना वेदविद्या शिकविणार आहेत. महाविष्णूच्या नंतरच्या अवतारांना आपणांतील तेज देणें, युद्धपद्धति शिकविणें, किंवा वेद-वेदांगांत पारंगत करणें हें परशुराम अवताराचें वैशिष्टयपूर्ण कार्य म्हणून दाखवितां येईल.

यज्ञ, दान, तप, आदि सत्य सनातन धर्माच्या पंचसूत्रीच्या परिपालनांत ते अग्रगण्य आहेत. त्यांनीं केलेला अश्वमेध यज्ञ अद्वितीय आहे. खांडलविप्र समाजाची निर्मिति त्यावेळीं झाली असें तो समाज आजही मानतो. त्यांनीं अपरान्ता-तही यज्ञ केल्याचे अवशेष आजही दाखविले जातात. किंवा श्रीकृष्णाचें भेटीचें वेळीं त्रेतागूनी विस्ताराचा संकोच करुन, केवळ होमासाठीं जवळ बाळगलेली धेनू घेऊन मी अेकटाच आलों आहें असें ते सांगतात. यावरून त्यांच्या यज्ञप्रियतेचें दर्शन घडूं शकतें. पुराणांत यज्ञपति म्हणून त्यांचा अुल्लेख आढळतो. माध्व सांप्रदायी लोक हरिणीपति "परशुराम प्रीत्यर्थे" असें म्हणून रोजच्या वैश्वदेवाच्या आहुति देतात. वैष्णव सांप्रदायी मंडळींवरील प्रभाव लक्षांत घेण्या सारखा आहे.

दानाचा विचार करावयाचा झाला तर साऱ्या पृथ्वीसहित सर्वस्व ते देअून टाकतात. द्रव्याच्या इच्छेनें त्यांचेकडे येणाऱ्याला द्यावयास जवळ तर धन नाहीं आणि विन्मुखतर पाठवावयाचें नाहीं म्हणून द्रोणाचार्यांना धनुर्वेदाचें विद्यादान त्यांनीं केलें.

अगदीं बालपणापासून त्यांची तपस्या अविरत चालूं आहे. तात्कालिक निमित्तानें त्यांत थोडाफार खंड पडेल तेवढाच. ते अेक सर्वश्रेष्ठ तापसी आहेत. घोर तपस्येनें त्यांनीं शिवाना नुसते प्रसन्नच करुन घेतलें असें नव्हे तर गुरुशिष्य अैक्याची परमोच्च श्रेणी त्यांनीं गांठली. त्याचे प्रतीक म्हणूनच कीं काय "शिवराम" हा शब्द त्यानंतर रुढ झाला असावा.

परशुराम हे केवळ अपरान्ताचें निर्माते नाहींत तर स्वत: निर्माण केलेल्या भूमींत आमंत्रित जमातींचीं त्यांनीं प्रस्थापना केलेली आहे. पतितांचा अुद्धार केलेला आहे. ब्राह्म आणि क्षात्रवृत्तींचा समतोल कायम राहील अशी अेक आदर्श समाज धारणा या नवप्रदेशांत त्यांनीं प्रस्थापित केली हे संस्कृति संगोपनाचें त्यांचें कार्य दशावतारांत सर्वश्रेष्ठ आहे.

पुढें चालू...४.

मातृहत्येचें अेकमेव अुदाहरण म्हणून ज्या परशुरामांच्याकडे बोट दाखविण्यांत येते, तेच परशुराम मातृसावर्ण्य मानणाऱ्या केरळ प्रांताचें परमश्रेष्ठ दैवत आहेत. तेथील सर्व समाजाची घडण परशुराम-शासित आहे. आजही तेथें परशुराम शक चालू आहे.

अत्यंत अुज्वल शिष्य परंपरा निर्माण केल्यामुळें परशुराम हे अेक श्रेष्ठ कुलगुरु समजले जातात. भीष्म, द्रोण, कर्ण यांना धनुर्वेद आणि राजनीति यांत त्यांनीं पारंगत केलें. या शिष्योत्तमांचें प्राविण्य इतकें अद्वितीय होतें कीं, भारतीय युद्धांत त्यांना समोरासमोर पराजित करणें भगवान श्रीकृष्णाला शक्य नव्हतें. म्हणूनच निरनिराळ्या क्लृप्त्या त्यांना योजाव्या लागल्या.

हरितायन मुनींना त्यांनीं श्री विद्येचें रहस्य अुकलून सांगितले आणि अशारीतीनें भूतलावर त्या गुह्यांतील गुह्य राजविद्येचें सर्वप्रथम प्राकट्य घडवून आणले. हें पाहून ब्रह्मदेवांना अचंबा वाटला आणि नारदं महर्षींना तर भूतलावर येअून हरितायनाची भेट घेण्याची जिज्ञासा झाली. "परशुराम कल्पसूत्र" हा तंत्रशास्त्राचा पायाभूत ग्रंथ मानला जातो.

व्यास महामुनि किंवा स्वतःचें दीक्षागुरु अवधूत दत्तात्रेय यांच्या प्रमाणेंच जामदग्न्य राम हेही स्मर्तृगामी आहेत. मातेनें स्मरण करतांच कैलासावरुन येअून मातेसमोर ते अुभे राहतात. गोकर्णावरील ब्रह्मवृन्द संकटांत पडतांच त्यांच्या साहाय्याला ते धांवून जातात.

परशुरामांना "धनस्य देवता" म्हणूनही संबोधलेले आहे. ठाणें जिल्ह्यांत अेक परशुराम टेकडी असून तेथें त्यांचे मंदिरही आहे. टेकडीच्या पायथ्याशीं कोणाही भक्तानें थोडीशी जमीन अुकरली तरी त्यास गुंजभर सोने मिळे. त्यावरुन त्या ठिकाणास "गुंज" हें नांव प्राप्त झालें. सुवर्णतंत्राच्या परिशीलनावरुन असें दिसतें कीं, स्वतःचें निमित्त करुन वसाहतीसाठीं आणलेल्या जमातीच्या योगक्षेमाची गुरुकिल्ली त्यांना शिवाजवळून प्राप्त करुन घ्यावयाची होती.

अपरान्तांत निरनिराळ्या प्रांतांतून देवतांना आणून त्यांची स्थापना तर परशुरामानीं केलीच. पण त्याशिवाय १४ ठिकाणीं पाशुपतास्त्राच्या साहाय्यानें स्वयंभू ज्योतिर्लिंगें निर्माण केली. यापैकी वालुकेश्वर महादेवाचा महिमा अेवढा होता कीं, प्रभु रामचंद्र आकर्षित होअून यात्रे निमित्त तेथें आले होते. हनुमानांनीं तर तेथें वास्तव्यच करण्याचें ठरविलें. पापक्षालन व पुनर्जन्म यापासून मुक्ति मिळावी म्हणून भक्तांचें थवेच्या थवे त्या ठिकाणीं जातें. छत्रपति शिवरायापासून कान्होजी आंग्रे किंवा राघोबादादा पेशवे पर्यंतच्या इतिहासांतील प्रसिद्ध व्यक्ति त्या यात्रेस जाअून आल्याचें संदर्भ गॅझेटियरमध्यें सांपडतात.

पुढें चालू...५.

परशुरामांच्या पदस्पर्शानें सारा अपरान्त पुनीत झालेला आहे. ते तर परशुराम-क्षेत्रच आहे. साऱ्या भरतवर्षांत असा कानाकोपरा नाहीं कीं, ज्या ठिकाणी परशुरामांच्या लीलावैभवाचीं स्मृतिचिन्हें आढळत नाहींत. अवताराचा प्रभावच पहावयाचा झाला तर आसाम पासून पेशावरा पर्यंत किंवा कश्मीरपासून कन्याकुमारी पर्यंत तुम्हांस अेकादे तीर्थ, अेकादे कुंड, अेकादे ज्योतिर्लिंग किंवा अेकादी यज्ञवेदी कोठेना कोठे तरी आढळेलच. कालाच्या ओघांत असंख्य अुत्पात होअूनही तो प्रभाव अद्यापहि टिकून आहे.

परशुराम चिरंजीव असल्यानें त्यांचें प्राकट्य निरनिराळया युगांत झालें आहे. अगदी अलीकडील अैतिहासिक काळांतही तसें संदर्भ मिळतात. विशेष असें कीं, या बहुतेक सर्व प्राकट्यांतून अेकसूत्रता दिसून येतें. संवत १६०० च्या सुमारास नारायणानें रचिलेल्या "सांखायन" गृह्यसूत्र प्रदीपिकेवरून असें दिसतें कीं त्यांचें पूर्वज जनार्दन याला परशुरामानीं सहा महिनें वेदविद्या शिकविली व त्यानंतर प्रत्यक्ष दर्शन दिले. कल्की पुराणाशीं हा संदर्भ जुळता मिळतांच आहे.

स्कन्ध पुराणावरुन असें दिसतें कीं, वारणापुरांत प्रतिवर्षीं संपूर्ण सप्ताह-भर रामोत्सव चाले. यज्ञपति परशुरामांचें गुणगान होई आणि रामगाथेंचीं पुनः-पुनः पारायणें केलीं जात - आजतरी ती गाथा नाममात्रच आहे. परशुरामांची इच्छाच झाल्यास तिचे प्राकट्य पुन्हा होईलही.

रामबाण शब्द अुच्चारला कीं, आपणाला दाशरथी रामाच्या धनुर्विद्येंतील प्राविण्याची आठवण येते. पण सहयाद्रि खंडांतील रामबाण-सुनिर्मिता या शब्दावरून असें पटूं लागतें कीं, हा शब्द प्रथम परशुरामांचें बद्दल वापरला गेला होता. ब्राह्म आणि क्षात्र वृत्तींतील समतोल निर्माण करण्याचें कार्य किंवा अपरान्तांतील त्यांनीं केलेली वसाहतीची मांडणीही अेका अर्थानें राम-राज्याचीं मूळ बैठक होती.

महाभारतावरील तात्पर्य निर्णय करतांना मध्वाचार्य म्हणतात कीं, भार्गवराम हे अनंतशक्ति सकलांतरात्मा, सर्वविद्, सर्ववशी आणि सर्वजित् आहेत. त्यांच्या सम अन्य कोणी नाहीं.

> अग्रतश्चतुरोवेदान् पृष्ठतः सशरंधनुः /
> इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शापादपि शरादपि //

हातांत वेद व पाठीवर धनुष्यबाण अशा रीतीनें अुभयतेजानें तळपणाऱ्या महापुरुषाचें वर्णन केवळ परशुरामांनाच लागू पडते. ते ध्यान प्रातःस्मरणीय आहे, वंदनीय आहे. जगाची आध्यात्मिक आणि आधिभौतिक प्रगति या अुभय तेजाच्या सहकार्यांत आहे, संग्रामात नव्हे. हेंच परशुरामांच्या अवतारकार्याचें सार आहे.

पुढें चालू..६.

ताण्डवी आणि वैष्णवी तेजाच्या संयुक्त अविष्कारांतच परशुरामांचे अवतारित्व साठविलेले आहे; पुराण ग्रंथांतून आढळणारे किंवा भाग्यवंतांना दर्शन झाल्यावर त्यांनीं वर्णन केलेले परशुरामांच्या तेजाचें वर्णन तर अव्दितीयच आहे. क्रोधायमान झाल्यावर ज्याप्रमाणें ते कालाग्नीपेक्षांही दुःसह आहेत त्याचप्रमाणें शांत झाल्यावर जटाजूट धारण करणारे, शुभ्र वस्त्र असलेले भक्तवत्सल तापसीही आहेत.

थोडक्यांत सांगावयाचें झालें तर दशांवतारांत भार्गवरामांचे कार्य अव्दितीय आहे. त्यांचें स्थान सर्वश्रेष्ठ आहे आणि सप्तचिरंजीवांत त्यांचें कर्तृत्व अग्रगण्य आहे.

म.स. पारखे.

(दिनांक २३-४-१९६६ रोजी ऑल इंडीया रेडीओ पुणें केंद्रावर झालेले भाषण)

पी/जे.

अक्कलकोटनिवासी

परम सद्गुरु श्रीगजानन महाराज

प्रणीत

—: अग्निहोत्र पुरस्कार :—

सृष्टिके प्रारंभमेंही साक्षात् ब्रह्माजी ने वेदोपदिष्ट सत्य सनातन धर्मका उपदेश तथा यज्ञ-यागादिक क्रियाओंका प्रचार किया। सांप्रत इस सनातन धर्मका लोप हो जाने के कारणही सर्वत्र अशांति, अनारोग्य, असमृद्धि, दुर्भिक्ष्य, शोक, अवर्षण दिखाई दे रहा है। सर्वत्र सुख, समृद्धि और शांति अगर चाहते है तो नित्य अग्निहोत्रसे लेकर अश्वमेधपर्यंत यज्ञ-यागादिक क्रियाओंका सार्वत्रिक प्रचार होना आवश्यक है। मानो यही कल्पतरु है, यही कामधेनु है।

ॐ तत् सत्

प्रकाशक : श्रीसद्गुरुसेवासमिति,

३७६ शुक्रवार पेठ, पुणें २.

[पेपको प्रेस, पुणें २.]

।। श्री कोशाम्बा गुरुभ्यो नमः ।।

श्री मद्‌तमृतवाग्भवाचार्य सांस्कृतिक शिक्षा एवं शोध प्रतिष्ठान

1· नाम- इस प्रतिष्ठान का नाम श्री मद्‌अमृत वाग्भवाचार्य सांस्कृतिक शिक्षा एवं शोध प्रतिष्ठान रहेगा ।

2· कार्यालय- इस प्रतिष्ठान का केन्द्रीय कार्यालय जयपुर रहेगा ।

3· कार्यक्षेत्र - कार्यक्षेत्र की दृष्टि से इस प्रतिष्ठान का क्षेत्र सम्पूर्ण भारत रहेगा ।

4· प्रतिष्ठान के उद्‌देश्य - प्रतिष्ठान के निम्नलिखित उद्‌देश्य रहेंगे :-

1- योग, अध्यात्म तंत्र एवं श्री विद्या संबंधी शोध, गवेषणा एवं प्रकाशन·

2- वैदिक वाङ्‌मय का विधि विद्याओं पर वैज्ञानिक अनुसंधान एवं संरक्षण·

3- प्राचीन पांडुलिपियों का संरक्षण

4- संस्कृत भाषा का प्रचार, प्रसार एवं संरक्षण तथा संस्कृत विद्यार्थियों के छात्र वृति आदि वितरण·

5- प्रतिष्ठान के उद्‌देश्यों की सम्पूर्त्यर्थ पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन एवं प्रकाशन·

6- योग एवं तंत्र विद्या का व्यावहारिक प्रशिक्षण एवं प्रयोग शाला का निर्माण·

7- समय-समय पर संगोष्ठियों, विशिष्ट आयोजनों एवं अध्ययन शिविरों के द्वारा भारतीय आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप को जन मानस में प्रतिष्ठापित करना।

8- विशिष्ट विद्वानों एवं प्रतिभाओं आदि का सम्मान एवं अभिनन्दन

9- उपरोक्त उद्‌देश्यों की सम्पूर्ति एवं अनुसंधान कार्य में उपयोग हेतु श्री पुस्तकालय की स्थापना एवं श्री भवन का निर्माण·

10-

5· आय के स्त्रोत एवं साधन- [अ] प्रतिष्ठान के उद्‌देश्यों की पूर्ति हेतु आय के निम्न लिखित स्त्रोत होंगे ।

1- सदस्यता शुल्क, 2-चन्दा, 3-राजकीय सहायता एवं अनुदान, 4-कालांतर में प्रतिष्ठान द्वारा भेंट अथवा अन्य किसी प्रकार की आय·

[ब] प्रतिष्ठान में ली गई किसी प्रकार की भी धनराशि की अधिकृत रसीद दी जायेगी ।

[स] स्थायी सम्पति दान लेने के लिए अध्यक्ष एवं महामंत्री प्रतिष्ठान के अधिकृत प्रतिनिधि होंगे तथा संबंधित अधिकार पत्रों पर उनके हस्ताक्षर प्रतिष्ठान के प्रतिनिधि के रूप में मान्य होंगे । सम्पति पर प्रतिष्ठान को स्वामित्व होगा।

6-· सदस्यता- प्रतिष्ठान के उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहने वाला कम से कम अठारह वर्ष का कोई भी पुरुष एवं महिला प्रतिष्ठान का निर्धारित शुल्क एवं सदस्यता पत्र द्वारा बन सकते हैं ।

7- सदस्यता के प्रकार -[1] सहायोगी सदस्य [2] सक्रिय सदस्य [3] आजीवन सदस्य [4] मान्य सदस्य [5] संस्थापक सदस्य

------2/-

8- सदस्यता शुल्क- प्रतिष्ठान के विभिन्न सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार से होगी :-

{1} सहयोगी सदस्य - दस रुपया प्रतिवर्ष,
{2} सक्रिय सदस्य - दस रुपया प्रतिवर्ष तथा 51/- अथवा अधिक एक मुश्त एक बार ।
{3} आजीवन सदस्य- दस रुपया प्रतिवर्ष तथा 501/-अथवा अधिक एक मुश्त में एक बार
{4} मान्य सदस्य -प्रतिष्ठान के अध्यक्ष महोदय कार्यकारिणी की अनुमति से अधिक से अधिक दो विशिष्ट ? व्यक्तियों कोएक वर्ष के लिये मान्य सदस्य बना सकते हैं ।मान्य सदस्य को सदस्यता शुल्क देना अनिवार्य नहीं होगा ।
{5} संस्थापक सदस्य- प्रारम्भ में जिन व्यक्तियों ने प्रतिष्ठान के गठन कर उसे मूर्त रूप दिया है तथा निष्ठापूर्वक कार्य किया है वे प्रतिष्ठान के संस्थापक सदस्य कहलायेंगे ।

9- प्रवेश शुल्क- प्रतिष्ठान का सदस्य बनने पर एक रुपया प्रवेश शुल्क के रूप में प्रत्येक सदस्य को प्रथम बार देना अनिवार्य होगा ।

10- सदस्यों की अपात्रता- निम्नलिखित व्यक्ति प्रतिष्ठान के सदस्य नहीं बन सकेंगे -
{1} मांस, मदिरा का सेवन करने वाले, {2} मानसिक रोगी {3} आपराधिक अभियोग से दण्डित व्यक्ति {4} देश, धर्म, संस्कृति और प्रतिष्ठान के उद्देश्यों में आस्था न रखने वाले व्यक्ति ।

11- सदस्यों की निर्योग्यतायें-
{1} निर्धारित शुल्क न देने पर,
{2} स्वयं त्यागपत्र देने पर,
{3} प्रतिष्ठान के उद्देश्यों की पूर्ति में बाधक बनने पर,
{4} कार्यकारिणी द्वारा उपस्थित दो तिहाई बहुमत से अयोग्य करार देने पर,
{5} प्रतिष्ठान के नियमों की अवहेलना करने पर,

12- सदस्यों के अधिकार-
{1} सहयोगी सदस्य - प्रतिष्ठान की समस्त गतिविधियों एवं कार्यक्रमों में सहयोगी के रूप में सम्मिलित हो सकेंगे । कार्यकारिणी के चुनाव के अवसर पर मत देने का अधिकार होगा किन्तु किसी पद पर खड़े होने का अधिकार नहीं होगा ।
{2} सक्रिय सदस्य- प्रतिष्ठान के हित के लिए समयानुसार सक्रिय योगदान देना अनिवार्य होगा । कार्यकारिणी के चुनावों में अपना मत दे सकेंगे तथा किसी भी पद पर खड़े हो सकेंगे ।
{3} आजीवन सदस्य - कार्यकारिणी के स्थायी सदस्य के रूप में रहेंगे । कार्यकारिणी में उपस्थिति अनिवार्य नहीं होगी । कार्यकारिणी में मतदान का अधिकार नहीं होगा । किन्तु प्रस्तुत विषयों पर अपने सुझावों से प्रतिष्ठान कार्यकारिणी को लाभान्वित करते रहेंगे ।
{4} मान्य सदस्य- कार्यकारिणी को अपने सुझावों से लाभान्वित करते रहेंगे किन्तु कार्यकारिणी में मतदान का अधिकार नहीं होगा ।
{5} संस्थापक सदस्य -{क} प्रतिष्ठान के संस्थापन में मूलरूप से जिन व्यक्तियों ने [illegible] प्रतिष्ठान के हित एवं प्रतिष्ठान की भावना हेतु रखा गया है ।

(ख) संस्थापक सदस्य कालांतर में प्रतिष्ठान के निर्वाचित पद पर न रहने पर भी कार्यकारिणी के स्थायी सदस्य बने रहेंगे ।

(ग) संस्थापक सदस्य कार्यकारिणी के किसी भी पद पर चुनाव में खड़े हो सकेंगे ।

(घ) दलगत भावनाओं के कारण प्रतिष्ठान में जब कभी विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो संस्थापक सदस्य प्रतिष्ठान का संचालन अपने हाथ में ले सकते हैं और प्रतिष्ठान को विघटित होने से बचा सकते हैं ।

(न) कार्यकारिणी द्वारा दिये गये निर्णयों में भी यदि प्रतिष्ठान के हित में आवश्यक हो तो परिवर्तन करने के संस्थापक सदस्य अधिकारी होंगे ।

(त) प्रतिष्ठान का अहर्निश हितसाधन संस्थापक सदस्यों के लिये अनिवार्य होगा तथा वे किसी प्रकार के शुल्क से प्रतिबंधित नहीं होंगे ।

(थ) चल सम्पति आदि की चाबियां तथा अचल सम्पति-भवनादि वस्तुओं पर नियंत्रण संस्थापक सदस्यों द्वारा संस्थापक सदस्यों में ही चयन किये गये दो सदस्यों के पास डबललोक में रहेंगी । किन्तु आवश्यकता पड़ने पर संस्थापक सदस्य किन्हीं अन्य दो को अपने स्थान पर अन्य सदस्यों की सहमति से एतदर्थ मनोनीत कर सकेंगे ।

निम्नलिखित सदस्य प्रतिष्ठान के संस्थापक सदस्य होंगे -

क्र० सं०	नाम	व्यवसाय	पता
1-	श्री गोविन्द जी मिश्रा	धर्मकार्य [redacted] सम्पादन	चौबुर्जा, भरतपुर
2-	श्री दुर्गादत्त शर्मा	राज्य सेवा	ए-72, जनता कालोनी, जयपुर
3-	श्री गिरराजशरणजी गुप्ता	" "	बी-208, जनताकालोनी, जयपुर
4-	श्री सियारामजी गर्ग	" "	बी-314 " " "
5-	श्री अखिलेश कुमार शर्मा	" "	ए-72, " " "
6-	श्री कालीचरण शर्मा	" "	बी-328, " " "
7-	डा० धर्मेश्वर जी शर्मा	चिकित्सक	चौबुर्जा, भरतपुर
8-	श्री धर्मगोपाल चतुर्वेदी	एडवोकेट	गोपालगढ़, भरतपुर
9-	श्री रमेशचन्द गुप्ता	"	बुधकी हाट, भरतपुर
10-	श्री गिरिराज शर्मा	धार्मिक सेवा एवं अध्ययन	जयपुर
11-	आचार्य दयानन्द सारस्वत	राज्य सेवा	जोधपुर

13- कार्यकारिणी- प्रतिष्ठान की कार्यकारिणी का गठन निम्न प्रकार होगा :-

1- अध्यक्ष-एक
2- उपाध्यक्ष - दो
3- महामंत्री- एक
4- संयुक्त मंत्री -दो
5- अर्थ मंत्री (कोषाध्यक्ष)- एक
6- सदस्य - आठ

14- कार्यकाल (अ) निर्वाचित होने के पश्चात् प्रतिष्ठान की कार्यकारिणी का सामान्यतः दो वर्ष का होगा । विशेष परिस्थितियों में कार्यकारिणी समय की उक्त अवधि को प्रस्ताव द्वारा 6 मास के लिए और बढ़ा सकती है ।

(ब) यदि कार्यकारिणी ढाई वर्ष तक कोई चुनाव नहीं कराये तो संस्थापक सदस्य प्रतिष्ठान का संचालन आवश्यक कार्यवाही हेतु संभाल लेंगे ।

15- आर्थिक वर्ष- (अ) प्रतिष्ठान का वर्ष विक्रम संवत् से प्रारम्भ माना जायेगा ।
(ब) प्रतिवर्ष की समाप्ति के तीन माह के अंतर्गत वार्षिक आय व्यय एवं प्रतिष्ठान की गतिविधियों के संबंध में एक प्रतिवेदन तैयार किया जाकर सभी सदस्यों को सूचनार्थ प्रतिवर्ष भेजा जायेगा ।

16- चुनाव (अ) प्रतिष्ठान के पदाधिकारियों का चुनाव गुप्त या पद्धति द्वारा बहुमत से होगा ।
(ब) साधारण सभा द्वारा कार्यकारिणी के लिये प्रतिनिधियों का चुनाव किया जायेगा ।सभी प्रतिनिधि मिल कर प्रतिष्ठान की कार्यकारिणी का गठन करेंगे ।
(स) प्रतिष्ठान के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कार्यकारिणी अपने अन्तर्गत अन्य समितियों का गठन एवं उनके संचालन हेतु नियमों का निर्माण कर सकेगी ।

17- अध्यक्ष के दायित्व एवं कर्तव्य -
(1) कार्यकारिणी एवं साधारण सभी की बैठकों की अध्यक्षता करना
(2) कार्यवाही को नियमित एवं अनुशासित ढंग से करना
(3) संस्थान की बैठक की कार्यवाही, प्रस्तावों एवं बिलों पर हस्ताक्षर करना ।
(4) प्रतिष्ठान की प्रतिष्ठा एवं विकास के लिये सतत् प्रयत्नशील रहना ।

18- उपाध्यक्ष के दायित्व एवं कर्तव्य-अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अध्यक्ष के समस्त दायित्वों का निर्वहन करना

19- महामंत्री के दायित्व एवं कर्तव्य -
(1) प्रतिष्ठान संबंधी समस्त अभिलेखों एवं पत्रादि की सुरक्षा.
(2) अध्यक्ष के परामर्श से विषय निर्धारण करना, कार्यकारिणी की बैठक बुलाना और उनकी व्यवस्था करना ।
(3) बैठकों की कार्यवाही को लिपिबद्ध करना एवं अध्यक्ष के हस्ताक्षर कराना ।
(4) प्रतिष्ठान की समस्त सम्पति पर निरीक्षणात्मक दृष्टि रखना ।
(5) आय व्यय की समय-समय पर देखभाल करना तथा संबंधित बिलों को सत्यापित करना ।
(6) रेकार्ड को व्यवस्थित रखना ।
(7) प्रतिष्ठान का वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करना तथा प्रस्तुत करणा ।

20- संयुक्त मंत्री के दायित्व एवं कर्तव्य-
(1) प्रतिष्ठान संबंधी समस्त कार्यों में महामंत्री को अपेक्षित सहयोग देना ।
(2) बैठकों की ~~xx~~ व्यवस्था एवं कार्यवाही के लेखन में महामंत्री का सहयोग देना ।
(3) महामंत्री की अनुपस्थिति में उनके समस्त दायित्वों का निर्वहन करना ।
(4) महामंत्री अध्यक्ष की अनुमति से मंत्रियों के मध्य सौंपे गये कार्यों एवे दायित्वों का निर्वहन करना ।

21- अर्थ मंत्री एवं कोषाध्यक्ष के दायित्व एवं कर्तव्य-
(1) प्रतिष्ठान के आय व्यय का सम्पूर्ण लेखा जोखा तैयार करना ।
(2) वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करने में महामंत्री को सहयोग करना ।
(3) प्रतिष्ठान की धनराशि को कार्यकारिणी द्वारा स्वीकृत बैंक में ज

§4§ अध्यक्ष एवं महामंत्री द्वारा स्वीकृत बिलों का भुगतान करना ।

§5§ प्रतिष्ठान की प्रत्येक चल अचल सम्पति का पूर्ण ब्योरा रखना ।

22- व्यय के अधिकार-

§1§ कार्यकारिणी की पूर्व स्वीकृति के बिना भी अध्यक्ष सौ रुपया तक व्यय करने की स्वीकृति दे सकता है ।

§2§ प्रतिष्ठान को आवश्यकता के लिए महामंत्री अध्यक्ष की अनुपस्थिति के बिना भी पचास रुपया व्यय कर सकता है ।

§3§ महामंत्री पचास रुपया तक की राशि अपने पास रख सकता है इससे अधिक होने पर कोषाध्यक्ष द्वारा बैंक में जमा करानी होगी ।

§4§ सौ रुपया से अधिक की राशि व्यय करने के लिए अध्यक्ष को कार्यकारिणी की स्वीकृति आवश्यक होगी ।

§5§ अध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष अथवा महामंत्री एवं कोषाध्यक्ष के संयुक्त हस्ताक्षरों द्वारा ही धनराशि बैंक से निकाली जा सकेगी ।

§6§ स्थायी निर्माण एवं व्यवस्था संबंधी कार्यों के लिए कार्यकारिणी की सम्मति लेना आवश्यक होगा ।

23- §7§ आय-व्यय के निरीक्षण के अधिकार- प्रतिष्ठान का कोई भी सदस्य यदि प्रतिष्ठान के आय व्यय का निरीक्षण करना चाहे तो उसे कम से कम पन्द्रह दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक होगा ।

24- विधान संशोधन एवं परिवर्तन-§1§ प्रतिष्ठान के विधान में कभी भी अनिवार्यता उपस्थित होने पर कार्यकारिणी बहुमत से संशोधन एवं परिवर्तन के अंश पर आधे से अधिक सदस्यों का सहमत होना आवश्यक होगा ।

§2§ परिवर्तन प्रावधान राजस्थान संस्थान रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1958 की धारा 12
25- के आधार पर होना जरूरी होगा ।

25- रजिस्ट्रार संस्थाएं, राजस्थान को संस्था के निरीक्षण का पूर्ण अधिकार है व उनके द्वारा दिये गये सुझावों की पूर्ति की जावेगी ।

26- विघटन संबंधी प्रावधान राजस्थान संस्था रजिस्ट्रीकरण अधिनियम 1958 की धारा 13 व 14 के आधार पर होना वांछित है ।

27- कार्यकारिणी की बैठकें :- §क§ वर्ष के अन्तराल में कार्यकारिणी की कम से कम दो बैठकें होना आवश्यक है । बैठकों के बीच का अन्तर छः माह से अधिक नहीं होगा ।

§ख§ कार्यकारिणी के आधे से अधिक सदस्यों की मांग पर कार्यकारिणी की बैठक कभी भी बुलाई जा सकती है ।

§ग§ कार्यकारिणी की बैठ की सूचना यदि अत्यंत आवश्यक न हो तो कम से कम दस दिन पूर्व सदस्यों को देनी होगी ।

§घ§ कार्यकारिणी की गणपूरक संख्या एक तिहाई मान्य होगी ।

§च§ आवश्यकतानुसार कार्यकारिणी के सदस्यों से पत्र व्यवहार द्वारा भी सुझाव, सम्मति एवं मत लिया जा सकेगा ।

28- संस्थान का समस्त कार्य हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि में सम्पन्न होगा ।

29- हम निम्न हस्ताक्षर कर्ता यह प्रमाणित करते हैं कि उपरोक्त संस्था पूर्ण नाम के विधान की सही वह सच्ची प्रतिलिपि है ।

महामंत्री उपाध्यक्ष अध्यक्ष

अर्थमंत्री

श्री मदअमृतवाग्भवाचार्य सांस्कृतिक एवं शिक्षा शोध प्रतिष्ठान

अग्निहोत्र



अग्निहोत्र

सृष्टीके उत्पत्तीके साथही परमपिता परमात्माने वेदवाणीद्वारा अखिल मानवसमाजके कल्याणका मार्ग उपदिष्ट किया, जो यज्ञ–दान–तप–कर्म और स्वाध्याय इन पाँच शब्दोंसे निर्दिष्ट पंचसाधन मार्ग कहलाता है।

वेद किसीं विशेष प्रदेश या मानवी वंशकी बपौती नहीं है।

वेदोंकी भाषा संस्कृत, यह सभी भाषाओंकी जननी है। संस्कृत भाषाके माध्यमसे परमात्माने अखिल जगतको ज्ञानका प्रकाश दिया है।

आज वायुमण्डल दूषित होनेके कारण सर्वत्र दु:ख, दौर्मनस्य तथा अशांती दिखाई दे रहे हैं। अग्निहोत्रके आचरणसे वायुमण्डल शुद्ध हो जाता है। वायुमण्डलशुद्धीके कारण प्राणशुद्धी होती हैं, और इसका कल्याणकारी परिणाम अपने आप मनकी कक्ष्यामें संक्रमित हो जाता है। सुखी जीवनके लिये मनकी शुद्धी आवश्यक है अत: अग्निहोत्र प्रत्येक मनुष्यके लिए परमावश्य है। आप चाहें हिन्दु, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, पारसी, यहूदी, सिख, जैन, इत्यादी किसीभी मतमे विश्वास करें, मन:शुद्धी आपको अपने अपने मतका एक अच्छा सदस्य बनायेगी।

वेदोंद्वारा उपादिष्ट पंचसाधनमार्ग यह मूलधर्म है। सभी अवतार, पैगम्बर, नबी, और सन्त इसी पंचसाधनमार्गका संदेश देतें आये हैं।

निम्नलिखित तीन घटकोंद्वारा अग्निहोत्रका असर होता है।

(१) सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय उच्चारित मंत्रोंके कंपनोंका असर.

(२) अग्निमें विशिष्ट पदार्थोंका ज्वलन, और उससे उत्पन्न होनेवाले वायू.

(३) 'न मम' इन शब्दोंमे सूचित शरणागतवृत्तीका अभ्यास.

अग्निहोत्रकी कार्यपद्धती

प्रत्यक्ष विधि

सूर्योदय : सूर्याय स्वाहा, सूर्याय इदं न मम ।

(प्रथम आहुति)

प्रजापतये स्वाहा, प्रजापतये इदं न मम ।

(दूसरी आहुति)

प्रात:कालका अग्निहोत्र समाप्त

सूर्यास्त : अग्नये स्वाहा, अग्नये इदं न मम ।

(प्रथम आहुति)

प्रजापतये स्वाहा, प्रजापतये इदं न मम ।

(दूसरी आहुति)

सायंकालका अग्निहोत्र समाप्त ।

अग्नि : अग्नि सिर्फ गोवंशके गोबरसे बने कंडलोंसे निर्माण करना चाहिये । गोवंशका गोबर यहाँ केवल गाय तथा इसके वंशके ही गोबरका निर्देश करता है, उसमें अन्य किसीभी प्राणिओं के गोबरका प्रयोग नहीं करना चाहिये । गोमयमें वो गुण विहित है जो वातावरणके शुद्धीमें प्रकर्षसे काम आते हैं ।

आहुति देनेके समय आग्निको पूर्ण प्रज्वलित रखना चाहिये । अग्नि निर्माण करनेके लिये घीका दीपक, गुग्गुल (गूगल), या कर्पूर इनका प्रयोग करें, क्योंकी इससे वातावरणमें प्रदूषण बढ़ेगा नहीं । इनके उपलब्ध न होनेपर यदि गॅस या तेलके स्टोवका प्रयोग करना पड़े तो गोबरके कंडलोंको चिमटे में पकड़कर स्टोव की ज्वालामें जलाईये । अग्निका निर्माण समिधाओंसेभी किया जा सकता है ।

समय : आपके रहनेके स्थानका ठीक सूर्योदय और सूर्यास्तका समय अग्निहोत्रके लिये निर्धारित समय है । दिनके ये दो महत्त्वपूर्ण संधिकाल है, और इस समय प्रकृतिमें बहुत महत्त्वके परिवर्तन

होते हैं । इन दो समय वैश्विक किरनोंके (Cosmic-Rays) पृथ्वीपर होनेवाले आघातमें असाधारण परिवर्तन हो जाते हैं । अग्निहोत्रकी आहुति ठीक इसी समयपर देनी चाहिये । सूर्योदय और सूर्यास्तका ठीक समय पंचांगसे या स्थानिक समाचार पत्रोंसे या ऑबझरवेटरी (वेधशाला) से आसानीसे जाना जा सकता है । यदि इस समय का उलंघन हुआ तो वो अग्निहोत्र नही होगा ।

मंत्र : मन्त्रोच्चार अर्धविराम आदि चिह्नोंके अनुकूल उचित विरामके साथ करना चाहिये । मन्त्रोच्चार न अत्यन्त मन्दगतिसे और न ही अत्यन्त शीघ्र गतिसे करना है । उच्चार न तो अधिक ऊँचे स्वर से हो न तो मन ही मन । ये शब्द सद्भावना निर्माण करनेवालें हैं । मन्त्रोके उचित उच्चारसे उत्पन्न होनेवाले कंपन मनपर गहरा असर करते हैं ।

आहुति : प्रत्येक आहुतिके लिये जितने पाँचो उंगलियोंके अग्रभाग मे पकडे जा सके उतने चाँवल काफी हैं । चाँवल रखने के लिये छोटी थाली लिजिये, अथवा चाँवल बाये हाँथ की हथेलीमें रखिये । चाँवलोंको ठीक तरीकेसे घी लगाईये । **अग्निहोत्र के लिये सिर्फ गायके घीका प्रयोग करना आवश्यक है।** प्रत्येक मन्त्रके उच्चारण के बाद एक एक आहुति दीजिये ।

आहुति पूर्ण जलने तक मन एकाग्र करनेका प्रयास कीजिये । संभव हो तो प्रत्येक अग्निहोत्रके बाद अधिकसे अधिक समय ध्यानके लिये देनेका प्रयास करें ।

परिवारमें एक व्यक्ति आहुति दे । सभीको आहुति देनेकी जरूरत नहीं । अग्निहोत्रके समय दूसरे व्यक्तीभी उपस्थीत रहनेका निश्चय करें तो उन्हें भी अग्निहोत्रसे लाभ होगा । यदी परिवारमें आहुति देनेवाला व्यक्ति, या अग्निहोत्र के पास

होते हैं। इन दो समय वैश्विक किरनोंके (Cosmic-Rays) पृथ्वीपर होनेवाले आघातमें असाधारण परिवर्तन हो जाते हैं। अग्निहोत्रकी आहुति ठीक इसी समयपर देनी चाहिये। सूर्योदय और सूर्यास्तका ठीक समय पंचांगसे या स्थानिक समाचार पत्रोंसे या ऑबझरवेटरी (वेधशाला) से आसानीसे जाना जा सकता है। यदि इस समय का उल्लंघन हुआ तो वो अग्निहोत्र नही होगा।

मंत्र : मन्त्रोच्चार अर्धविराम आदि चिह्नोंके अनुकूल उचित विरामके साथ करना चाहिये। मन्त्रोच्चार न अत्यन्त मन्दगतिसे और न ही अत्यन्त शीघ्र गतिसे करना है। उच्चार न तो अधिक ऊँचे स्वर से हो न तो मन ही मन। ये शब्द सद्भावना निर्माण करनेवालें हैं। मन्त्रोके उचित उच्चारसे उत्पन्न होनेवाले कंपन मनपर गहरा असर करते हैं।

आहुति: प्रत्येक आहुतिके लिये जितने पाँचो उंगलियोंके अग्रभाग मे पकडे जा सके उतने चाँवल काफी हैं। चाँवल रखने के लिये छोटी थाली लिजिये, अथवा चाँवल बाये हाँथ की हथेलीमें रखिये। चाँवलोंको ठीक तरीकेसे घी लगाईये। **अग्निहोत्र के लिये सिर्फ गायके घीका प्रयोग करना आवश्यक है।** प्रत्येक मन्त्रके उच्चारण के बाद एक एक आहुति दीजिये।

आहुति पूर्ण जलने तक मन एकाग्र करनेका प्रयास कीजिये। संभव हो तो प्रत्येक अग्निहोत्रके बाद अधिकसे अधिक समय ध्यानके लिये देनेका प्रयास करें।

परिवारमें एक व्यक्ति आहुति दे। सभीको आहुति देनेकी जरूरत नहीं। अग्निहोत्रके समय दूसरे व्यक्तीभी उपस्थीत रहनेका निश्चय करें तो उन्हें भी अग्निहोत्रसे लाभ होगा। यदी परिवारमें आहुति देनेवाला व्यक्ति, या अग्निहोत्र के पास

बैठनेवाले व्यक्ति कही सफर पर जायें तो वे अग्निहोत्र का सामान अपने साथ ले जाकर, उस जगह के निर्धारित समयपर आहुति दे सकते हैं। आहुति देनेवाले व्यक्तिके अनुपस्थितिमें परिवार का अन्य कोई सदस्य आहुति दे सकता है। यदि परिवारके सभी लोगोंको अन्यत्र जाना हो तो अपने घरपर आहुति देनेके लिये मित्र या पडोसीकोभी कहा जा सकता है, यदि संभव है। कृपया अग्निहोत्रके स्थानको साफ और पवित्र रखनेका प्रयास करें। अग्निहोत्रके पहले स्नान इत्यादीसे शरीरको बाह्यरूपसे शुद्ध करनेका प्रयत्न करें। यदि सायंकालमें स्नान करनेका अभ्यास नहीं हो तो अग्निहोत्रसे पहले हाँथ, पैर और मुँह धोना ठीक है।

आग्निहोत्रके अग्निको स्वयं ही शांत होने दे, इसे बुझाने का प्रयत्न न करे। भस्मको अग्निहोत्रके पात्रसे निकालकर दूसरें डिब्बमें या थैलिमें रखे। उसे पौधें और वृक्षोंमें खादके रूपमें डालें। भस्मको निरर्थक समझकर कुडादानमें न डाले।

हमारा सुख बाह्यपारीस्थितियोंके प्रति हमारी मानसिक प्रतिक्रियाओंपर निर्भर है। अग्निहोत्र मानसिक उद्वेग और बूरी प्रवृत्तियोंको नष्ट करता है, और उससें मन:शांतीका लाभ होता है। अग्निहोत्रसे मन एकाग्र करनेमें मदत होती है। अतएव अग्निहोत्रसे ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण होना संभव है। कईं सालोंके प्रयत्नोंके बादभी जो प्राप्त नहीं होते ऐसे सुपरिणाम आग्निहोत्रके आचरणसे जल्दही अनुभव आते हैं।

कोईभी व्यक्ति थोडेसे निश्चयसे आग्निहोत्रका आचरण कर सकता है।
आजही अग्निहोत्रका प्रारंभ करें और सृष्टिचक्र सुचाररूपसे चलानेके कार्यमे ईश्वरसेवा करके अपना जीवन आनंदमय करे।

प्राप्तिस्थान - विद्या विलास,
११८३ शिवाजीनगर, पुणे ४११००५.

HINDI.